साइकिल
बच्चों का दुमहिया
वर्ष 6 अंक 2
जून - जुलाई 2023
हरी पतंग पे हरा पतंगा
मूल्य ₹125

वर्ष 6 अंक 2 जून - जुलाई 2023

सम्पादन सुशील शुक्ल, शशि सबलोक
सहायक सम्पादक निधि गौड़, चन्दन यादव
डिज़ाइन तापोशी घोषाल
कवर तापोशी घोषाल
वितरण राजेन्द्र परमार, अनीता शर्मा

साल	मूल्य	छूट %	मूल्य छूट के बाद	पंजीकृत डाक खर्च	कुल मूल्य
1	750	12	660	245	905 रुपए
2	1500	15	1275	490	1765 रुपए
3	2250	18	1845	735	2580 रुपए

एक प्रति 125 रुपए
(डाक खर्च अतिरिक्त)

भुगतान विवरण - बैंक ड्राफ्ट/चेक
इकतारा ट्रस्ट Ektara Trust के नाम नई दिल्ली में देय
ऑनलाइन ट्रांसफर - आई.सी.आई.सी.आई. बैंक,
बी-78 डिफेंस कॉलोनी, नई दिल्ली
खाता नम्बर - 630001028225, IFSC ICIC0006300 में भेजें।
ऑनलाइन खरीद की लिंक
www.ektaraindia.in/ektarashop/
भुगतान और वितरण की पूरी जानकारी
publication@ektaraindia.in पर दें।

इस QR कोड को मोबाइल से स्कैन कर सभी UPI से भुगतान किया जा सकता है।
भुगतान के बाद सम्पर्क, पता, ऑर्डर और भुगतान की तमाम जानकारियाँ साझा करें।

इकतारा **तक्षशिला का बाल साहित्य एवं कला केन्द्र**
2, मालवीय नगर, भोपाल 462003
फोन 0755-4939472, 9109915118, 9630097118
ई-मेल cycle@ektaraindia.in
वेबसाइट www.ektaraindia.in

जब पानी की शाखों पर, मीठे पानी-फल आए
दूर-दूर से उन्हें देखने कितने मछली-दल आए

विमल चित्रा
चित्रः तापोशी घोषाल
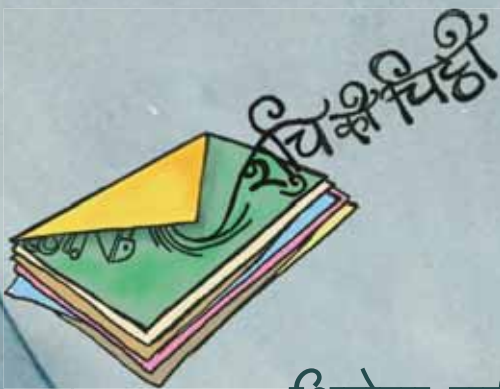
सिनेमा बड़ी होकर क्या बनेगी?

शुचि प्रसाद
चित्रः एलन शॉ

दोस्तो,

इन दिनों आसमान में बहुत बादल हैं। मैं जब पहाड़ चढ़ती हूँ तो बादल मेरे सिर पर सवार रहते हैं। एक दिन मेरे सिर पर एक बूँद गिरी। उसके गिरते ही एक सवाल उगा।

सिनेमा बड़ी होकर क्या बनेगी?

सिनेमा अभी बच्ची है। उसके दोस्त पेंटिंग, संगीत, शिल्प... सब उससे बड़े हैं। अभी तो पता नहीं कि बड़ी होकर सिनेमा क्या बनेगी! सिनेमा की एक बड़ी बहन है - फोटोग्राफ। ज़ाहिर है उसका जन्म सिनेमा से पहले हुआ था।
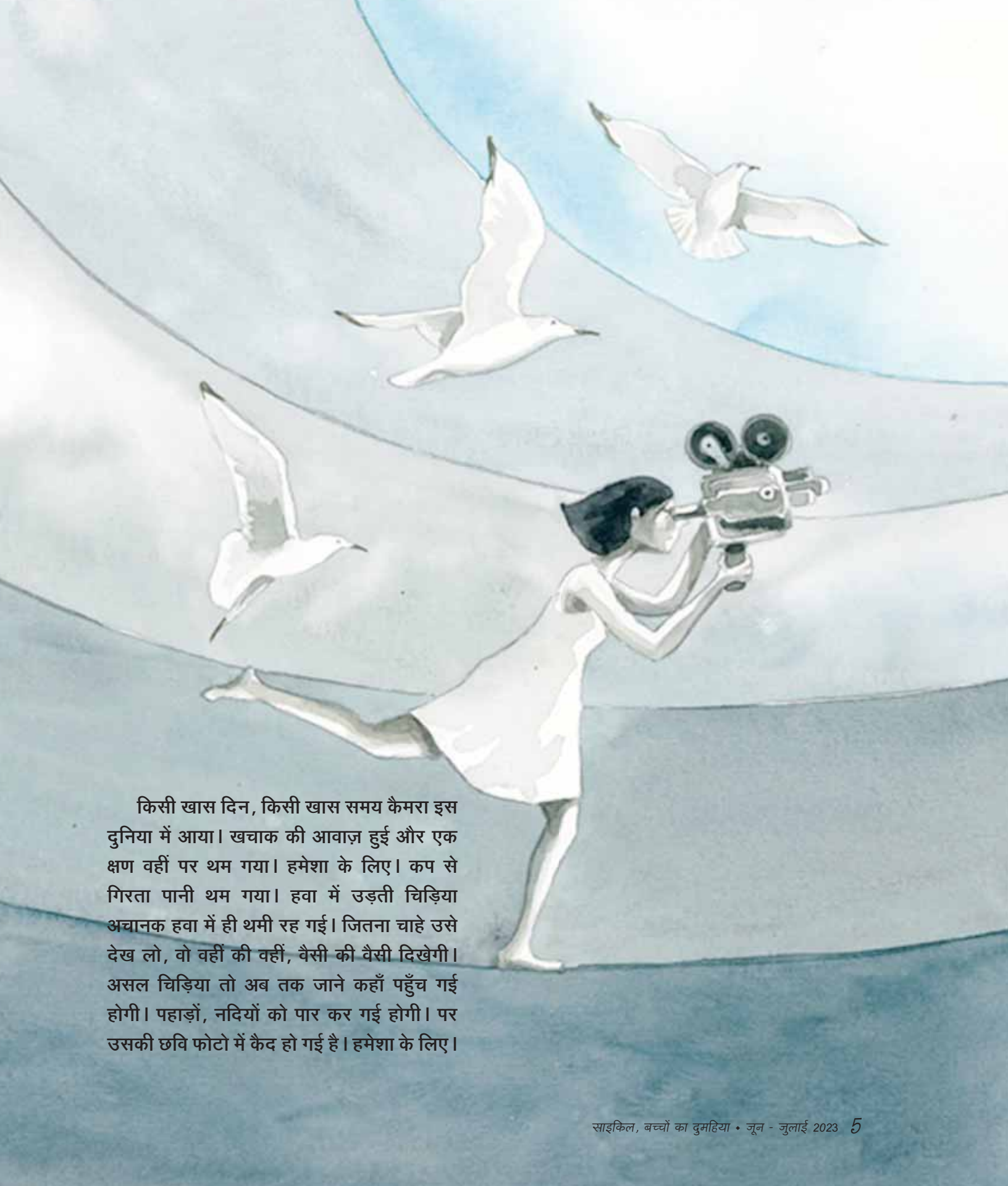
किसी खास दिन, किसी खास समय कैमरा इस दुनिया में आया। खचाक की आवाज़ हुई और एक क्षण वहीं पर थम गया। हमेशा के लिए। कप से गिरता पानी थम गया। हवा में उड़ती चिड़िया अचानक हवा में ही थमी रह गई। जितना चाहे उसे देख लो, वो वहीं की वहीं, वैसी की वैसी दिखेगी। असल चिड़िया तो अब तक जाने कहाँ पहुँच गई होगी। पहाड़ों, नदियों को पार कर गई होगी। पर उसकी छवि फोटो में कैद हो गई है। हमेशा के लिए।

फिर वीडियो बना। पहली बार प्लेटफॉर्म पर आती एक ट्रेन को फिल्माया गया। कई सिनेमा हॉल में लोगों ने इसे देखा। पहली बार अँधेरे हॉल में परदा गिरा। प्रोजेक्टर चला। और जैसे ही ट्रेन पास आते दिखी कुछ लोग चीखने लगे। कुछ सिनेमा हॉल से भाग निकले।

आज देखें तो वो प्लेटफॉर्म बहुत बदल गया होगा। पास में उगे पेड़ कितने बड़े हो चुके होंगे। वो ट्रेन पुराने डिब्बों के यार्ड में कहीं दबी पड़ी होगी। उसकी जगह नई चमचमाती ट्रेन ने ले ली होगी। बावजूद इसके हम उसी ट्रेन को उसी प्लेटफॉर्म पर बार बार, बार बार, बार बार पहुँचा सकते हैं। जैसे सालों पहले किसी हॉल में बैठे लोगों ने देखा था।

कैमरे में किसी घटना को, किसी क्षण को कैद किए जाने से एक उम्मीद जगी। कि क्या इस तरह से कोई कहानी भी कही जा सकती है! क्या दादा-दादियों की कहानियों के शब्द कोई सूरत, कोई तस्वीरें पा सकते हैं। जिसे हम सब एक साथ देख सकें। पर कहानियाँ सुनते हुए भी तो हमारे मनों में तस्वीरें उपजती हैं। हरेक मन में ये अलग-अलग हो सकती हैं। इतना ही नहीं एक ही कहानी एक ही मन में अलग समय में अलग तस्वीर बना सकती है। तो क्या फिल्मों से कही कहानियाँ सबके लिए एक जैसी होंगी! उन्हें देखना, उन्हें समझना जैसे १ अ १ उ २ को समझना होता है! या क्या इसमें यह भी गुँजाइश होगी कि इसे १ अ १ उ १०० समझा जा सके! क्या यह बिना बादलों वाले नीले आसमान जितना साफ होगा या सपनों की तरह धुँधला!

मैं पहाड़ों के बीच से गुज़रती हूँ। हर पेड़ मुझे अलग दिखता है। उनका आकार अलग है। उम्र अलग है। उन पर अलग-अलग फूल खिलते हैं। उन पर बैठनेवाली चिड़ियाँ अलग हैं जो दूर कहीं जाते हुए कुछ देर यहाँ आराम को बैठती हैं। दूर से यह एक विशाल जंगल-सा लगता है जिसके बीच से आप गुज़र सकते हैं। रुक कर देख सकते हैं।

तुम्हें क्या लगता है सिनेमा बड़ी होकर और क्या बन सकती है?

बताना। मुझे इन्तज़ार रहेगा।

तुम्हारी दोस्त
शुचि

क्या एक नन्ही चिड़िया बाघ से कम अहम है?

मधुसुदन कट्टी
अनुवादः फज़ल रशीद
चित्रः तापोशी घोषाल

इस कदर बेवकूफी भरे सवाल कौन पूछता है?

सब जानते हैं कि बाघ ज़्यादा अहम है। इन दोनों की कोई बराबरी नहीं। फिर भी मैंने एक छोटी-सी चिड़िया वार्बलर पर काम करना चुना। मैं कई सालों से तमिलनाडु के कालकाद-मुंदनथुरई टाइगर रिज़र्व में वार्बलर पर शोध कर रहा हूँ। लोग सुनते हैं तो मुझ पर सवालों की बौछार कर देते हैं-

"इन नन्ही चिड़ियों पर अल्लाह जाने क्यों शोध करना!"

"कोई फिज़ूल-सा छिपा हुआ मकसद होगा!"

एक टाइगर रिज़र्व के मैनेजर साहब ने तो यहाँ तक पूछ डाला कि इन पिद्दी-सी चिड़ियों पर आपका शोध मुझे बड़े स्तनपाई (मैमल) के आवास के बारे में क्या बताएगा? अगर हम अपना पूरा ध्यान बड़े मैमल्स पर रखें (जो प्रोजेक्ट टाइगर का फलसफा है) तो ज़ाहिर है बाकी प्रजातियों को भी फायदा होगा। और बाकी छोटे-मोटे जानवर तो अपना ख्याल खुद रखें! छोटे प्राणियों में हमें सिर्फ उनकी फिक्र होनी चाहिए जो प्रमुख प्रजातियों की आहार श्रृंखला के हिस्से हैं।

लीफ वार्बलर्स

यह छोटी-सी दबे हरे रंग की चिड़िया इतनी चंचल और फुर्तीली है कि जंगल में इन्हें पहचानना बड़ा मुश्किल काम है। इनकी अलग-अलग प्रजातियों

के बीच के बारीक फर्क को देख पाना आसान नहीं है। खैर, हमारे पार्क मैनेजर का इन प्रजातियों को पहचानने की मुश्किलों से दो-चार होना ज़रूरी नहीं। वो इसलिए कि लीफ वार्बलर्स किसी भी प्रजाति की हो जंगल में उनकी भूमिका लगभग एक-सी रहती है। हाँ, हर प्रजाति के भोजन पाने का तरीका थोड़ा अलग ज़रूर है।

भारतीय उपमहाद्वीप में लीफ वार्बलर की सभी 18 प्रजातियाँ घुमन्तु हैं। गर्मियों में ये हिमालय से लेकर आर्कटिक सर्कल तक के कुछ इलाकों में अण्डे-बच्चे देती हैं। इन इलाकों में गर्मियों और सर्दियों के तापमान में बहुत अन्तर नहीं होता। फिर सितम्बर से मई तक वो हमारे देश आ जाती हैं। इस दौरान वो हिमालय की तलहटी से लेकर पूर्वोत्तर भारत के सारे जंगलों पर कब्ज़ा कर लेती हैं। एक वार्बलर का वज़न सिर्फ 7-11 ग्राम होता है। वार्बलर और जंगल के रिश्ते की बात करते हुए, मैं "कब्ज़ा कर लेती हैं" पर ज़ोर देना चाहता हूँ। ये सचमुच करोड़ों की तादाद में आती हैं। बहुत मुमकिन है कि सर्दियों में हमारे जंगलों में यही सबसे ज़्यादा चहकती होती हों। पश्चिमी घाट के मुंदनथुरई इलाके में जहाँ मैं काम कर रहा हूँ वहाँ तो ये बहुत ज़्यादा होती हैं। एक जगह पर आमतौर पर इनकी दो से तीन प्रजातियाँ होती हैं। यह उस जंगल के प्रकार पर निर्भर करता है। हमारे देश का शायद ही कोई जंगल होगा जहाँ साल में कम से कम एक बार वार्बलर अपना घर न बनाती हों।

इस दौरान ये परिन्दे करते क्या हैं?

बस, ज़्यादातर कीड़े-मकोड़े खाते रहते हैं। शायद आपको इनकी ज़िन्दगी बेरंग लगे। लेकिन ये अपने 75 प्रतिशत से भी ज़्यादा जागने वाला समय पत्तियों और बेलों में कीड़ों को खोजने और खाने में बिता देती हैं। चूँकि इस मौसम में ना इनको अपना साथी ढूँढना पड़ता है, ना चूज़ों को पालना होता है। तो ये सिर्फ अपनी तन्दुरुस्ती बनाने पर ध्यान देती हैं। और अगली गर्मियों की तैयारी में। उनके और काम जैसे, चोंच से अपने पर सँवारना और चहचहाने, कलाबाज़ियों के ज़रिए अपना इलाका बनाए रखने में ये ज़्यादा समय नहीं लगातीं। अरे, अरे, ये छुट-पुटी-सी बेरंग चिड़िया दिन भर बस पत्तियों में कीड़े खोजती रहती हैं... क्या मैं खुद अपना तर्क कमज़ोर कर रहा हूँ?

नहीं जनाब, बिलकुल नहीं। आप यह मानिए कि
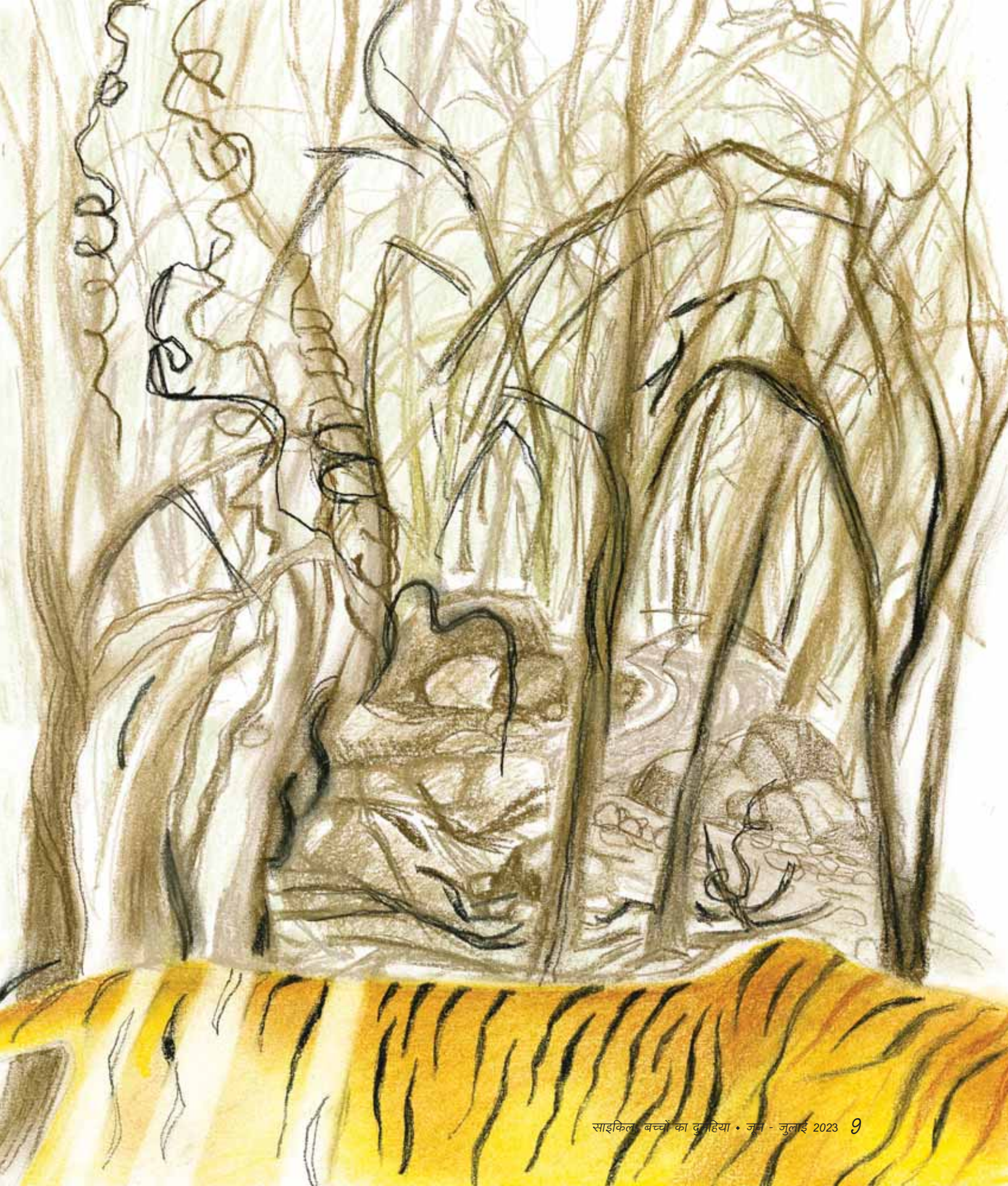
हर एक लीफ वार्बलर हर एक मिनट में तीन कीड़े खाती है। इनके ज़्यादातर शिकार फूल-पत्तियाँ खाने वाले कीड़े होते हैं। मुंदनथुरई में ज़्यादातर उनका शिकार पत्ते चबाती इल्लियाँ होती हैं। महज़ एक लीफ वार्बलर 180 कीड़े हर घण्टे या 1,980 कीड़े हर दिन खाती है (सुबह से शाम के औसतन 11 घण्टों में)। मेरे इलाके के सिर्फ एक हेक्टेयर में 6 वार्बलर पेड़-पौधों को तकरीबन 12,000 भुक्कड़ कीड़ों से बचाती हैं, रोज़ाना! अब सोचिए जो सात-आठ महीने वे इसे अपना घर बनाती हैं, ये करीबन तीस लाख कीड़े खाकर पेड़-पौधों की सेवा-टहल करती हैं। अन्दाज़ लगाइए कि अगर मैं सारे वार्बलरों को गायब कर दूँ तो कुछ ही हफ्तों में जंगल की क्या हालत होगी! फर्ज़ करें कि वार्बलर समेत तमाम कीड़े खाने वाले पक्षी भी गायब कर दूँ तो यह मंज़र कितना खौफनाक हो जाएगा। मेरे अन्दाज़ में मुंदनथुरई में कम-से-कम 40 ऐसी कीड़े खाने वाली चिड़ियाँ होंगी: वार्बलर और फ्लाईकैचर (निवासी और घुमन्तु), मिनिवेट, श्राईक, ड्रोंगो, बैब्लर, वगैरह वगैरह।

आपको यकीन करना होगा कि इन कीटाहारी परिन्दों के गायब होते ही सारे पेड़-पौधे अधनुचे लगने लगेंगे। उनकी पत्तियाँ जाली-जाली हो जाएँगी। लँगूर जो पहले ही कम बचे हैं वो भी नाखुश हो जाएँगे क्यूँकि इल्लियों के कतरने से सारे पत्ते अब ज़हरीले पदार्थ से भरे होंगे। पेड़-पौधे कम फूलने-फलने लगेंगे क्यूँकि वो अपनी सारी ताकत तो खुद को बचाने में झोंक चुके होंगे। फूलों का रस पीने वाले और फलाहारी जानवर भी मायूस हो जाएँगे। जंगल की नई पैदाइश धीमी हो जाएगी क्यूँकि बीज कम बनेंगे। पेड़ कम फैलेंगे। और तो और, ज़मीन तेज़ी से सूखने लगेगी क्यूँकि पेड़ों की छतरी छितरी होने से धूप ज़्यादा आने लगेगी। और क्या-क्या हो सकता है इसके अन्दाज़ लगाना मैं आप पर छोड़ देता हूँ। मैं तो सिर्फ इतने पे खुश हूँगा अगर आप पहचान लें कि साल-दर-साल हज़ारों किलोमीटर का सफर कर ये नन्हे कीटाहारी हमारे जंगलों पर कितना उपकार कर रहे हैं।

इससे पहले कि आप ऐतराज़ करें कि सारी चिड़ियों को गायब करना बेमतलब की बात है और मैं किसी फर्ज़ी कयामत की खबरें ला रहा हूँ, तो आप कुछ बातों पर गौर फरमाएँ। सर्दियों में मुंदनथुरई की 80 प्रतिशत वार्बलर (खास तौर से ग्रीन लीफ वार्बलर) और अगला सबसे ज़्यादा दिखनेवाला घुमन्तु पक्षी (ब्लाइथस रीड वार्बलर) कैस्पियन सागर के इर्द-गिर्द के पहाड़ी जंगलों से आते हैं। तुर्की से कश्मीर तक और इसमें दक्षिणी रूस के कुछ हिस्से और अफगानिस्तान भी जोड़ लें। ये पहाड़ी इलाके बहुत सारी घुमन्तु कीटाहारी चिड़ियों की प्रजनन भूमि हैं। यहीं अण्डे देते हैं और यहीं बच्चे पालते हैं। अब सोचिए कि इंसानी वन-कटाई या वैश्विक जलवायु परिवर्तन की वजह से बड़े पैमाने पर यहाँ के जंगल बियाबान बन जाएँ तो इन परिन्दों की तादाद 90 प्रतिशत तक घट जाएगी। अमरीका के पक्षी विज्ञानी कहते हैं कि घुमन्तु पक्षियों की संख्या में ऐसी गिरावट मुमकिन है। पिछले दो दशकों में अमरीका और यूरोप में पर्यावरण को लेकर एक भयावह स्थिति बनती जा रही है। इस बार इसका कारण खेतों में अँधाधुन्ध रसायनों का प्रयोग नहीं होगा। इस बार यह इंसानी करतूतों के कारण होगा। इसका असर घुमन्तु पक्षियों के प्राकृतिक वास पर हो रहा है। उत्तर में जहाँ ये अण्डे-बच्चे देते हैं वहाँ भी और सर्दियों में दक्षिण में उनके आवास पर भी। कुल मिलाकर अमरीका में

पिछले दो दशकों के इंसानी कारनामों की वजह से बहुत सारे घुमन्तु पक्षी विलुप्त होने की कगार पर आ गए हैं।

अब हम अपने महाद्वीप पर वापिस आते हैं। हमारे पास तो वन पक्षियों की जनसंख्या के रुझान की जानकारी तक नहीं है। दक्षिण और दक्षिण-पूर्व एशिया, रूस, मंगोलिया और साइबेरिया में वहाँ के रहवासी और घुमन्तु दोनों तरह के पक्षियों की संख्या बुरी तरह गिरने वाली है (अगर अभी तक नहीं गिरी है तो)। हमारे यहाँ किसी भी राष्ट्रीय संरक्षण संस्था के कामों की फेहरिस्त में यह शामिल नहीं है। अगर हमारे परिन्दों की संख्या भी तेज़ी से गिर रही है, तो मैमल-पसन्द कौम की आँखों के सामने उनके पसन्दीदा जानवरों का आवास भी बंजर बनते देर न लगेगी।

क्या आपको लगता है कि इन हालातों में बाघ भी बेफिक्र रह पाएँगे?

क्या अब भी आपको लगता है कि वार्बलर पर शोध करना एक फिज़ूल का शगल है? यह समझने की कोशिश करना कि इनकी संख्या कैसे बढ़ती है, इनको कैसे बचाया जाए ताकि वो साल-दर-साल हमारे देश आती रहें?

क्या वार्बलर बाघ से कम अहम हैं?

क्या यह सवाल ही बेमानी नहीं है?

गधे के सिर से सींग

फ़रह अज़ीज़
चित्रः राजीव आइप

कहते हैं जब कोई किसी चीज़ का इस्तेमाल नहीं करता तो वो गधे के सिर से सींग हो जाती है... यानी गायब! और अगर किसी चीज़ का ज़्यादा इस्तेमाल कर लो तो वो और बढ़ जाती है!

सुनने में यह भले ही उल्टा लगे, लेकिन होता ऐसा ही है।

जैसा गबरू गधे के साथ हुआ। गबरू के सिर पर दो सींग हुआ करते थे। अरे, वैसे ही जैसे गाय, भैंसों के होते हैं। पर वो बस थे। वह उनका कोई इस्तेमाल

नहीं करता था। पीठ पर खुजली होती तो पूँछ मार कर काम चला लेता। लड़ना-झगड़ना उसे पसन्द नहीं था। इसलिए वहाँ भी सींग काम न आए।

एक सुबह जब गबरू सो कर उठा तो उसके सिर से सींग गायब थे!

अपना दुखड़ा सुनाने वो अपनी दोस्त बानो बकरी के पास पहुँचा। और देखता है कि उसके सींग तो बानो के सिर पर सजे हैं। बानो के पास पहले सींग नहीं थे। फिर भी अपने बच्चों को बचाने के लिए वो सिर मार-मार कर सबको दूर भगाती थी। यानी सिर का खूब इस्तेमाल किया। और देखिए कमाल कि उसके सिर पर सींग निकल आए!

हँसमुख हाथी का किस्सा भी इससे अलग नहीं। उसने अपनी छोटी-सी नाक का इस्तेमाल न सिर्फ सूँघने के लिए किया बल्कि पानी पीना, नहाना भी इसी से किया। एक सुबह उसकी नाक जो बढ़ने लगी तो ये लम्बी सूँड बन गई!

हँसमुख तो खुश हुआ लेकिन गबरू गधे की दुनिया उदास हो गई। अपने सींगों से भले ही उसने कोई काम न लिया हो, पर प्यारे तो वो उसे खूब थे। बिना सींगों वाला सफाचट सिर उसे खाली-खाली लगने लगा। पर क्या करे...अब तक चिड़िया तो खेत चुग गई थी।

यह बात अब थोड़ी पुरानी हो चुकी है।

आज गोल्डी के घर सुबह से कुछ अजीब घट रहा है। उसकी मम्मी के हाथ हर पाँच मिनट में आधा सेण्टीमीटर लम्बे हो रहे हैं और उसके भाई के आधा सेण्टीमीटर छोटे।

गोल्डी और उसकी दीदी के अँगूठे बहुत बड़े हो गए हैं। बैलून जैसे। और बाकी उँगलियाँ गायब हो रही हैं। उनकी आँखें बल्ब जितनी हो चुकी हैं। और बढ़ती ही जा रही हैं।

गोल्डी के पापा तो छोटे होते-होते गायब ही हो गए हैं। कहीं नज़र नहीं आ रहे हैं।

वैसे तुम्हें इस सब से घबराने की कोई ज़रूरत नहीं। तुम कहाँ कोई ऐसा काम करते हो कि तुम्हारे अँगूठे बैलून बन जाएँगे और आँखें बिजली का बल्ब! या तुम्हारे हाथ गधे के सिर से सींग हो जाएँगे और तुम्हारी मम्मी के हाथ हाथी की सूँड़! तुम तो मस्त रहो।

कछुआ और खरगोश

इब्ने इंशा
चित्रः समिधा गुंजाल
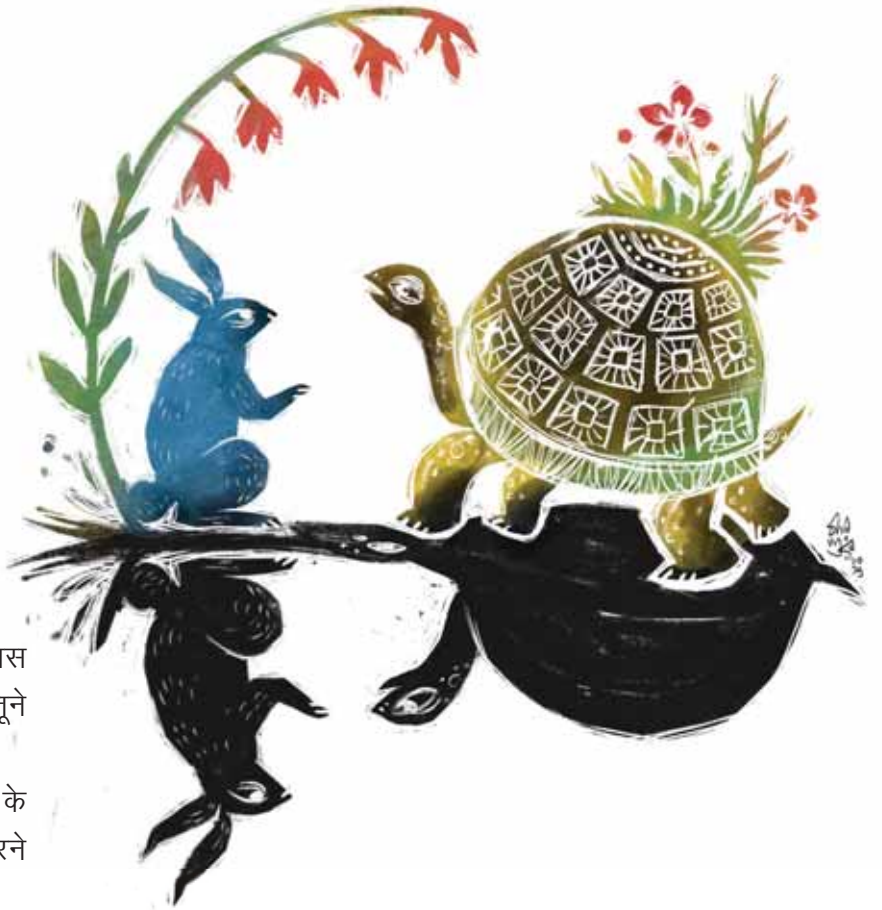
एक था कछुआ। एक था खरगोश। दोनों ने आपस में दौड़ की शर्त लगाई। कोई कछुए से पूछे कि तूने शर्त क्यों लगाई? क्या सोचकर लगाई?

बहरहाल तय यह हुआ कि दोनों में से जो नीम के टीले तक पहले पहुँचे उसे अख्तियार है कि हारने वाले के कान काट ले।

दौड़ शुरू हुई तो कछुआ रह गया। और खरगोश यह जा, वह जा। मियाँ कछुए वज़ादारी की चाल चलते रहे। कुछ दूर चलकर ख्याल आया कि अब आराम करना चाहिए, बहुत चल लिए। आराम करते-करते नींद आ गई।

न जाने कितना ज़माना सोते रहे। जब आँख खुली तो सुस्ती बाकी थी। बोले, अभी क्या जल्दी है। इस खरगोश के बच्चे की क्या औकात है जो मुझ जैसे अज़ीम विरसे के मालिक से शर्त जीत सके। वाह भई वाह, मेरे क्या कहने।

काफी ज़माना सुस्ता लिए तो फिर मंज़िल की तरफ चल पड़े। वहाँ पहुँचे तो खरगोश न था। बेहद खुश हुए। अपनी मुस्तैदी की दाद देने लगे। इतने में उनकी नज़र खरगोश के एक पिल्ले पर पड़ी। उससे खरगोश के बारे में पूछने लगे।

खरगोश का बच्चा बोला, "जनाब, वह मेरे वालिद साहब थे। वह तो पाँच मिनट बाद ही यहाँ पहुँच गए थे। और मुद्दतों आपका इन्तज़ार करने के बाद मर गए। वो वसीयत कर गए हैं कि कछुए मियाँ यहाँ आएँ तो उनके कान काट लेना। लिहाज़ा लाइए इधर कान।"

कछुए ने फौरन ही अपने कान और सर खोल के अन्दर कर लिए और आज तक छिपाए फिरता है।

(उर्दू की आखिरी किताब से साभार)

उर्दू के स्कूल गए

सौम्य मालवीय

चित्रः शिवम चौधरी

अच्छे भले 'अलिफ़' होते थे
'बे', 'पे', 'ते' पे झूल गए
'से' ने ऐसा रोका रस्ता
उर्दू के स्कूल गए

'जीम' जीम के पढ़ने लग गए
'चे' से चच्च-चच्च-चा करते
'हे' से हे हे हे ही बेहतर
मरते तो क्या ना करते
'ख़े' की ख़ारिश लिए गले में
मोहन और मक़बूल गए

'दाल' 'डाल' के बड़े पेट में
'ज़ाल' की खूँटी पर लटके
'रे', 'ड़े', 'ज़े' की कड़ी ख़ुशामद
'झे' से छूट गए छक्के
'सीन' ने ऐसा 'सीन' बनाया
इटली इस्ताम्बूल गए

'शीन' बड़ा शाना निकला
सर पर काशाना निकला
'स्वाद'-'ज़्वाद' की खींचतान में
जी का जिमख़ाना निकला
'तोए'-'ज़ोए' ने लग्गी मारी
सारे जुर्म क़ुबूल गए

'ऐन'-'ग़ैन' तक आते-आते
जान ज़रा जाँ में आई
'फ़े' ने थोड़ी लस्सी फेंटी
'क़ाफ़' ने कॉफ़ी पिलवाई
'काफ़'-'गाफ़' की जोड़ी से मिल
कुप्पा-कुप्पा फूल गए

‘लाम’ पे जमकर सुस्ताए फिर
दुबले ‘मीम’ से बतियाए
‘नून’- ‘वाओ’ की फिरकी ली
और ‘छोटी-हे’ से शरमाये
‘बड़की-छुटकी ये’ भी बोलीं
कैसे रस्ता भूल गए

हरी-भरी हो गई तबीयत
रहते थे सूखे-सूखे
मौसम ने हौले से फेरी
चेहरे पर ‘दो-चश्मी हे’

नस्तलीक़ के मोती बिखरे
बोले बहार को ओ रुक जा
मन की क्यारी पर दीवाना
बनकर इतराया हम्ज़ा

धीमे-धीमे उर्दू आई
ताक धिना धिन धिन धिन ना
आँ आँ आँ जब हुआ ज़ियादा
लगा दिया ‘नून-गुन्ना’

उड़ते फिरते हैं गलियों में
अब इसको-उसको समझाते
हल्के में मत लेना उर्दू,
आती है आते-आते
भई आती है आते-आते

हो सकता है पेड़ कभी उड़ता हो....

विनोद कुमार शुक्ल
चित्रः तापोशी घोषाल

हो सकता है पेड़
कभी उड़ता हो!
शाखाओं, पत्तियों का
मोर जैसा पंख उसका
फैल जाता हो।

तब चिड़िया उड़ ना पाती हो
पर उड़ते पेड़ में रहकर
घोंसला बनाती
अण्डे देती हो!!

उड़ते पेड़ में रहकर
चिड़िया का मन
खुद उड़ने का तो
कभी हुआ नहीं।

एक दिन सुस्ताने सब
उड़ते पेड़, जंगल के जंगल
धरती पर ठहर गए तो
धरती से हुई दोस्ती गहरी
जड़ें धँसी पेड़ों की गहरी इतनी
कि उड़ना तक भूल गए
बदले में चिड़िया उड़ना
सीख गई।

चीनी कहानी

सुन्दर पहाड़ियों का नज़ारा

लाओ मा
प्रस्तुतिः यादवेन्द्र
चित्रः शिवम चौधरी

मेयर के नाम उसके दफ्तर में एक चिट्ठी आई। यह चिट्ठी यांगयांग नाम की लड़की ने लिखी थी जो ग्रीन प्राइमरी स्कूल की दूसरी कक्षा में पढ़ती थी। उस चिट्ठी का मज़मून यह हैः

प्रिय मेयर अंकल,

कैसे हैं आप?

मुझे आप को दो बातें बतानी हैं - उनमें से एक अच्छी है पर अफसोस, दूसरी बुरी है।

पहले अच्छी खबर। मेरे माँ पापा ने फ्यूचर कम्युनिटी के बिल्डिंग नम्बर 23 में नया घर खरीदा है। हमारा यह घर 14वें तल्ले पर है - खूब सुन्दर और प्यारा-सा घर है। इसमें कभी भी कितनी भी बरसात हो, छत से पानी नहीं टपकता। यहाँ आने के बाद जब हम सामने की खिड़की के पास पहली बार खड़े हुए तो पापा ने पश्चिम की पहाड़ियों का सुन्दर नज़ारा हमें दिखाया... यह बताया भी कि उन्होंने यह घर यही सोचकर खरीदा कि खिड़की पर खड़े होकर हमारा पूरा परिवार हरी-भरी पहाड़ियों का नज़ारा कर सकेगा।

जब यहाँ आकर मैंने पहली बार हरी-भरी पहाड़ियाँ देखीं तो मेरा मन खुशी से झूम उठा। मैंने माँ-पापा को बार-बार कहा कि क्या मेयर अंकल भी हमारी तरह इस खूबसूरत दृश्य को देख सकते हैं? उन्होंने मुझे बताया कि आप अपने काम में बहुत व्यस्त रहते हैं... पर एक दिन हम उन्हें अपने घर आने का न्योता देंगे और कहेंगे कि जब भी उन्हें काम से थोड़ी फुरसत मिले हमारी बालकनी पर हमारे साथ थोड़ा समय बिताएँ और पश्चिम की ओर दिखने वाली पहाड़ियों की खूबसूरती का आनन्द लें।

पर मुझे तो आपको दूसरी बात भी बतानी है- बुरी खबर।

पिछले लगभग दो महीनों से सामने वाली पहाड़ियाँ नहीं दिखाई दे रही हैं। जब हम पहली बार इस घर में रहने आए थे तो मैं हर रोज़ यहाँ से उन पहाड़ियों को निहारती थी, लेकिन ऐसा नहीं था कि हर रोज़ वह मुझे दिख ही जाती थीं। जिस दिन आसमान साफ होता और धुंध न होती उस दिन मुझे इन पहाड़ियों के दर्शन होते। अंकल, आपको यह जानकर शायद ताज्जुब हो कि मैंने अपनी मैथ्स की कॉपी में तारीखवार पूरा हिसाब रखा हुआ है। हर सुबह जब मैं बालकनी में खड़ी होकर पश्चिम दिशा में देखती हूँ और मुझे पहाड़ी दिखाई दे रही होती है तब उस तारीख पर मैं टिक लगा देती हूँ ...यदि नहीं देख पाती हूँ तो क्रॉस का निशान लगाती हूँ। पिछले छह महीनों का हिसाब-किताब मेरे पास है। मुझे यह बताते हुए अफसोस हो रहा है कि इन छह महीनों में केवल बारह दिन ऐसे थे जिन पर टिक लगा है, बाकी

सारी तारीखों पर क्रॉस लगा हुआ है। पिछले दो महीनों की बात करें तो मुझे एक भी ऐसा दिन नहीं याद जब मुझे बॉलकनी से पहाड़ियाँ दिखाई पड़ी हों... मेरी किताब में सिर्फ क्रॉस ही क्रॉस लगे हैं।

हर रोज़ अब ऐसा लगता है जैसे, सलेटी रंग की धूल ठहरी हुई हो सामने। पापा ने बताया वायु प्रदूषण के चलते ऐसा हो रहा है। मेयर अंकल, क्या यह सही है कि प्रदूषित हवा ने सुन्दर पहाड़ियों को हमारी नज़रों से छुपा लिया? मेरा मन उन हरी-भरी पहाड़ियों को हर रोज़ देखने को मचलता है पर निराशा हाथ लगती है। आपसे मेरी विनती है कि कुछ ऐसा उपाय करें जिससे मैं पहाड़ियों को फिर से निहार पाऊँ। आप करेंगे न अंकल? ये पहाड़ियाँ वाकई बेहद खूबसूरत हैं।

माफी चाहती हूँ मेयर अंकल, मैं खामखाँ आपको परेशान कर रही हूँ।

मेयर ने जब यह चिट्ठी पढ़ी तो बहुत भावुक और विचलित हो गए। उन्होंने फौरन अपनी कलम उठाई और चिट्ठी के हाशिए पर अपना निर्देश दर्ज किया, "बच्ची ने चिट्ठी में जो लिखा है वह बहुत महत्वपूर्ण है। उसकी आँखों को तत्काल अच्छे से अच्छे इलाज की दरकार है। सम्बंधित विभाग को यह निर्देश दिया जाता है कि फौरन इस चिट्ठी को उपयुक्त अस्पताल तक पहुँचाया जाए। इस बात की हर सम्भव कोशिश की जाए कि बच्ची की नज़र फिर से दुरुस्त हो जाए और वह सामान्य ढंग से देख सके।"

(लाई किशेंग और लाई पिंग के अँग्रेज़ी अनुवाद पर आधारित)

ननकू की लड़की

निरंकारदेव सेवक

चित्रः हबीब अली

ननकू की लड़की की भेड़ें
जाने गईं किधर
उन्हें भेड़िया पकड़ न खा ले
उसे बहुत है डर

ननकू की भोली लड़की तू
बिलकुल सोच न कर
जंगल में इधर-उधर चर
आ जाएँगी घर

चित्रः तापोशी घोषाल

मध्यप्रदेश के खंडवा ज़िले में वन रक्षक की भर्ती हो रही थी। उन्हें चार घण्टे में 24 किलोमीटर की दौड़ लगानी थी। अधिकारी ने हरी झण्डी दिखाई और दौड़ शुरू हो गई। पहाड़ सिंह भी इस दौड़ में शामिल थे। वो बहुत तेज़ दौड़े। इतना कि तीन घण्टे में 21 किलोमीटर दौड़ लिए। फिर मुड़ कर देखा। दूर-दूर तक कोई नहीं दिखा। उन्होंने सोचा होगा कि अभी तो बाकियों को यहाँ पहुँचने में टाइम लगेगा। शरीर थका हुआ था। आश्वस्त होकर वो सड़क किनारे खड़े डंपर की आड़ में लेट गए। थके शरीर पर नींद हावी हो गई। दौड़ में शामिल सभी एक-एक कर उन्हें पार कर दौड़ते गए।

दौड़ खत्म हुई। वन विभाग ने गिनती में एक प्रतिभागी को कम पाया। ढूँढने पर वे सोए मिले। और दौड़ से बाहर कर दिए गए।

प्रभात

चित्रः प्रिया कुरियन

कक्षा दो में आज कुछ मज़ेदार हुआ है। त्रिखा मैम ने सबको सन्तरे खिलाए। खाने के बाद बीजों को अलग रख लेने को कहा।

"ये जो तुम्हारे हाथों में बीज हैं, इन्हीं से रसीले सन्तरे आते हैं। कभी यह करना, बीजों को ज़मीन में बोना और देखना।" त्रिखा मैम ने बताया। उसके बाद खेल की घण्टी बज गई।

"कभी क्यों, अभी क्यों नहीं?" भुवि ने पलाश से कहा।

"चलो, चलकर बीजों को बोते हैं और देखते हैं।" पलाश ने कहा।

भुवि को बड़ी जल्दी थी। उसने कक्षा से बाहर आते ही जो ज़मीन देखी, उसी में बीजों को बोने का सुझाव दिया।

"नहीं।" पलाश ने कहा, "इन्हें बगीचे में बोते हैं। वहाँ और भी पौधे हैं। पौधों को पानी भी दिया जाता है।"

"नहीं, नहीं। कक्षा के बाहर ही बोएँगे। यहाँ पास रहेंगे तो हम आसानी से देखते रहेंगे।" भुवि ने कहा।

"नहीं।" पलाश ने बगीचे में ही बोने की ज़िद की।

"यहीं।" भुवि ने यहीं बोने की ज़िद की।

दोनों ओर से ज़िद होने लगी तो कुछ देर बाद लड़ाई हो जाती है। पलाश ने भुवि को चाँटा लगा दिया।

इस बात का बहुत हंगामा हुआ। भुवि और पलाश के घर में। त्रिखा मैम के मन में। यहाँ तक कि प्रिंसिपल मैम के दफ्तर में।

अगले रोज़ भुवि की मम्मी ने भुवि के कान में कुछ कहकर स्कूल भेजा।

पलाश की मम्मी ने पलाश के कान में कुछ कहकर स्कूल भेजा।

स्कूल में जब भुवि दिखा तो पलाश ने पास जाकर "सॉरी" कहा।

"सॉरी किस बात के लिए। हम तो दोस्त हैं।" भुवि ने कहा।

फिर वे दोनों सन्तरे के उन बीजों को खोजने लगे जो उन्होंने कल कहीं फेंक दिए थे।

यह खोज ज़रूरी थी। क्योंकि, जैसा कि त्रिखा मैम ने बताया था, "इन्हीं से रसीले सन्तरे आते हैं।"

जय हो...

श्रीप्रकाश

झारखण्ड का पश्चिम सिंहभूम ज़िला देश के सबसे अमीर इलाकों में एक है। यहाँ लोहा, मैंगनीज़ जैसे खनिजों के भण्डार हैं। जगह अमीर है पर लोग गरीब। खेती बारिश पर निर्भर है। यहाँ लोगों के बुनियादी हक छिनने की खबरें आती ही रहती हैं। यहाँ के अधिकतर युवा अहमदाबाद, चेन्नई, हैदराबाद जैसे महानगरों में जा बसे हैं। यहाँ खासतौर पर हो समुदाय के आदिवासी रहते हैं। हो, संथाली के साथ-साथ यहाँ हिन्दी भी बोली जाती है।

बात करोना और पहले लॉक डाउन के समय की है। उन दिनों जीवन ऑन लाइन और सोशल मीडिया के इर्द-गिर्द सक्रिय हो गया था। यहीं से मुझे पिरधान बिरुवा के बारे में पता चला। वे हो आदिवासी हैं। 2018 से वे पण्डरासाली गाँव में एक निशुल्क बोर्डिंग स्कूल - आयुब - चला रहे हैं। आयुब, हो भाषा का शब्द है। इसका अर्थ है संध्या या डूबता सूरज। यहाँ के बच्चे परम्परागत स्कूल में पढ़ते हैं और बाकी का समय यहाँ गुज़ारते हैं।

मैं भी इस मुहिम से जुड़ गया। एक मोबाइल, बहुत ही अस्थिर नेटवर्क और हर उम्र के बच्चों के साथ हमारा ऑनलाइन सफर शुरू हुआ। पहले मोबाइल से फोटोग्राफी, फिर वीडियोग्राफी और फिर कहानी और स्क्रीनप्ले की बात हुई।

फोटोग्राफी के विभिन्न आयामों के लिए कई दोस्त जुड़े। सभी एक ही मोबाइल से फोटो खींचते। देखिए कितनी जल्दी इसे पहचान भी मिली। तीन बच्चों की खींची तस्वीरें एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता में चुनी गईं।

नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ डिज़ाइन, अहमदाबाद की अदिति बनर्जी और किरण कदम ने कहानी से लेकर स्क्रीनप्ले की कक्षाएँ लीं। कहानियों की कक्षा में सबसे बड़ी चुनौती 13 से 20 बरस के छात्रों के लिए कमर्शियल सिनेमा की भाषा, उसके व्याकरण में, स्क्रीन प्ले के लिए पाठ तैयार करना था। वर्कशॉप में कुछ बेहद सुन्दर कहानियाँ लिखी गईं।

इनमें पण्डरासाली और आयुब स्कूल के अलावा आसपास के गाँव और नज़दीकी शहरों के भी बच्चे शामिल हुए।

यहाँ के डूबते सूरज की-सी चमक, ठण्डक, सुकून और कहीं नहीं।

बारिश में सूखी लकड़ियाँ
गाँवों में बारिश में चूल्हा जलाना मुश्किल हो जाता है। सूखी लकड़ियाँ कहाँ खोजें? औरतें लकड़ियों की तलाश में दूर-दूर तक निकल जाती हैं। छोटे बच्चे भी मज़े-मज़े में उनके साथ निकल पड़ते हैं। अपने हिस्से की रोटी का ईंधन वो खुद लाने के कायल हैं।
फोटोः गीता बिरुवा

गाँव की सुबह

ठण्ड की ठिठुरी सुबह। गाँव के बड़े काम पर निकले हैं। बच्चे एक-दूसरे को खोजकर खेलने में लग गए हैं। ठण्ड है। बच्चे हलके स्वेटर और हाफ पैंट में हैं। खेल में यूँ मस्त हैं कि लगता नहीं कि ठण्ड उनका कुछ बिगाड़ सकती है।

फोटोः गीता बिरुवा

छोटे दुकानदार

पश्चिम सिंहभूम का पांड्रासाली गाँव। ज़िला मुख्यालय से 40 किलोमीटर दूर। यहाँ खेलने के बहुत साधन नहीं हैं। बच्चे अपने खेल खुद बनाते हैं। वे नमकीन-बिस्कुट वगैरह के पैकेट जमा करते जाते हैं। मिट्टी-पत्थर डालकर उन्हें पैक करते हैं। फिर इन्हीं से दुकान-दुकान का खेल खेला जाता है।

फोटोः जयंती बिरुवा

बाल ईसा के नाम एक आसमानी-सुलतानी!

सोपान जोशी

चित्रः एलन शॉ

इससे भयानक अकाल इतिहास में नहीं मिलता है। 1876 में दक्षिण और पश्चिमी हिन्दुस्तान में बारिश नहीं हुई! अगले साल यह सूखा मध्य भारत और उत्तर-पश्चिम में फैल गया। 1878 तक हिन्दुस्तान पर यह कहर बरपा रहा। बिना बरसात के फसलें सूखती गईं। जंगल और चारागाह भी। इंसान, मवेशियों किसी के लिए भी भोजन नहीं बचा।

उस समय यहाँ ब्रिटिश सरकार का राज था। उसे केवल अपने मुनाफे की फिक्र थी। उसकी शह पर भारतीय व्यापारियों ने अनाज का निर्यात इंग्लैंड में किया। वहाँ उसका भाव ज़्यादा था। हिन्दुस्तान में 80 लाख से ज़्यादा लोग भूख से मारे गए।

सरकार की नज़र हिन्दुस्तान से होने वाले मुनाफे पर थी। सो उसने मौसम विभाग को इस सूखे का अध्ययन करने के लिए कहा। यह अकाल केवल भारत में ही नहीं, चीन, अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका तक फैला था। सभी जगह बारिश कम हो गई थी। ब्रिटिश सरकार ने जगह-जगह बारिश और तापमान नापने के यंत्र लगाए। दुनिया भर की जानकारी इकट्ठी की जाने लगी। लगता था कोई एक उफान है जो कुछेक साल में एक बार आता है। और सारी दुनिया के मौसम के साथ खिलवाड़ करता है।

इस उफान को समझने में वैज्ञानिकों की पीढ़ियाँ लग गईं। लगभग सौ साल! तब समझ आया कि यह उफान प्रशान्त महासागर में पैदा होता है। दक्षिण अमरीका के तट के पास। वहाँ के समुद्र में फिरने वाले मछुआरे इसे सबसे पहले पहचान लेते हैं। इस उफान का पहला संकेत बड़े दिन या क्रिसमस के त्यौहार के आसपास मिलता है। इसलिए मछुआरों ने ईसा के जनम पर इसका नाम रखा – एल नीन्यो। स्पैनिश में नवजात लड़के को 'नीन्यो' कहते हैं।

छोटा नाम, रूप विराट

एल नीन्यो का नाम जितना छोटा है, उसका स्वरूप उतना ही बड़ा है। इसके दो मुख्य कारण हैं। पहला है, सूरज की किरणों का ताप और दूसरा, पृथ्वी का अपनी धुरी पर घूमना। इसे समझने के लिए वैज्ञानिकों ने पृथ्वी को एक बहुत बड़ी घूमती हुई गेंद की तरह देखा।

सूरज की गर्मी सबसे ज़्यादा भूमध्य रेखा के आसपास पड़ती है। इसीलिए इस इलाके को 'उष्णकटिबन्ध' कहते हैं। यहाँ के बड़े इलाके में समुद्र है। यहाँ सीधी पड़ती सूरज की किरणों से पानी भाप बनके उठता है। जहाँ गर्मी अधिक होती है वहाँ हवा का दबाव कम हो जाता है। इसलिए कि हवा अपने साथ बड़े-बड़े बादलों को लिए हुए वहाँ से दूर भागती है।

हवा की यह चाल बेतरतीब नहीं है। इसका ढर्रा तय होता है पृथ्वी के घूमने से। चौबीस घण्टे में पृथ्वी अपना एक घुमाव पूरा कर लेती है। हवा का अपना वज़न होता है, जो पृथ्वी के घुमाव के हिसाब से यहाँ-वहाँ बिखरता है। कर्क रेखा और मकर रेखा के बाहर से हवाएँ भूमध्य रेखा की तरफ आती हैं। पूर्व से पश्चिम की ओर। इन्हीं हवाओं पर अपनी पाल बिखेर कर व्यापारी जहाज़ सदियों से सागर पार करते रहे हैं। इसीलिए इन्हें अँग्रेज़ी में 'ट्रेड विंड्स' कहते हैं।

प्रशान्त पृथ्वी का सबसे बड़ा महासागर है। इसलिए इन हवाओं की ताकत वहाँ तेज़ होती है। प्रशान्त महासागर में ये हवाएँ हर साल पूरब में दक्षिण अमरीका से पश्चिम में इंडोनेशिया की तरफ बहती हैं। सूरज के ताप से गरमाए समुद्र के पानी को ये पश्चिम की ओर धकेलती हैं। इससे चिली और पेरू जैसे दक्षिण अमरीकी देशों के तट पर गहरे समुद्र का पानी ऊपर आता है। साथ ही मछलियों को भी ऊपर लाता है।

उधर दूसरे छोर पर इंडोनेशिया और ऑस्ट्रेलिया में बादलों से लदी हवाएँ बारिश बिखेरती हैं। इसका असर सारी दुनिया पर होता है। भारतीय महासागर से मॉनसूनी हवाएँ बादलों को हमारे उपमहाद्वीप के पार हिमालय तक ले आती हैं। पूर्वी अफ्रीका में बारिश होती है। उत्तरी अमरीका के सूखे इलाकों तक इसकी वजह से बादल पहुँच जाते हैं। दुनिया भर की जलवायु पर इसका असर होता है।

हवा-हवाई

ये हवाएँ कभी कमज़ोर पड़ जाती हैं और कभी तेज़ हो जाती हैं। दो-से-सात साल के बीच किसी भी साल दिसम्बर के अन्त में ये हवाएँ हलकी पड़ जाती हैं। तब दक्षिणी गोलार्ध में ग्रीष्म ऋतु अपने चरम पर होती है। ऐसा क्यों होता है और कब होता है यह आज तक कोई ठीक से समझ नहीं पाया है। जब ऐसा होता है तब भूमध्य रेखा के इर्द-गिर्द समुद्र के ऊपर गर्म हवाएँ पश्चिम की ओर नहीं जाती हैं।

घने बदलों को लिए ये हवाएँ कभी-कभी दक्षिण अमरीकी देशों की ओर जाती हैं। और वहाँ ताबड़तोड़ बारिश और बाढ़ लाती हैं। दक्षिण-पूर्वी एशिया और ऑस्ट्रेलिया में एल नीन्यो के साल में तेज़ गर्मी पड़ती है। बारिश कम हो जाती है। भारतीय उपमहाद्वीप, पूर्वी अफ्रीका और उत्तर अमरीका में सूखा पड़ने की आशंका बढ़ती है। एल नीन्यो पूरी पृथ्वी पर विनाश फैला देता है।

इससे उलटा भी होता है। तीन-से-पाँच साल में एक बार पश्चिम की ओर बहने वाली ये हवाएँ औसत से तेज़ हो जाती हैं। तब दक्षिण अमरीका के तटीय इलाके में तेज़ सर्दी पड़ती है और ऑस्ट्रेलिया और दक्षिण-पूर्व एशिया पर अत्यधिक बारिश। भारत और पूर्वी अफ्रीका में भी। इसका नाम 'एल नीन्यो' से उलट है, 'ला नीन्या' यानी नवजात बालिका। यानी प्रशान्त महासागर में पश्चिम की ओर बहती हवाएँ या तो साधारण अवस्था में रहती हैं, कभी-कभी रुक जाती हैं और कभी-कभी बहुत तेज़ हो जाती हैं। विज्ञान में इसका नाम है - एल नीन्यो सदर्न ऑसिलेशन यानी एल नीन्यो का दक्षिणी झूला।

पिछले तीन साल से प्रशान्त महासागर में ला नीन्या की अवस्था बनी हुई है, जो अनूठी घटना है। फरवरी 2023 में यह संकेत आने लगे थे कि प्रशान्त महासागर में ला नीन्या हट रहा है और इस साल एल नीन्यो की आशंका है। अगर ऐसा होता है, तो इसका परिणाम अगले साल सामने आएगा। किन्तु यह कब होगा, क्यों होगा, यह वैज्ञानिक सफाई से बता नहीं सकते हैं।

इतना तो साफ है कि जलवायु परिवर्तन इस झूले से होने वाले विध्वंस को बढ़ाएगा। और यह झूला जलवायु परिवर्तन से होने वाले हादसों को बढ़ाएगा। 1876-78 जैसा अकाल और लाखों की मौत आज नहीं हो सकती है। हमारे देश पर ब्रिटिश राज नहीं है कि हमारे व्यापारी अपने लोगों को भूखा छोड़ के विदेश में अनाज निर्यात कर दें। किन्तु जलवायु परिवर्तन का कारण भी व्यापार में ही पाया जा सकता है।

आज की आर्थिक व्यवस्था और व्यापार पूरी तरह कोयले और पेट्रोलियम पर निर्भर है। आर्थिक विकास के लिए बड़ी मात्रा में इन खनिज ईंधनों को जलाना ही आज जलवायु परिवर्तन का एकमात्र कारण है। इसमें कोई सन्देह नहीं बचा है। किन्तु व्यापार की दुनिया उतनी ही तेज़ी-से इस विध्वंस का विकास कर रही है जितनी तेज़ी से भारतीय व्यापारियों ने 1876 में अनाज का निर्यात किया था।

व्यापार और अर्थशास्त्र में केवल बैंक खाते देखे जाते हैं, उस प्रकृति को नहीं जिससे हम बने हैं, जिसका सन्तुलन हमारे अस्तित्व की नींव है। यही 'अशुभ लाभ' है।

एक किताब के दो दिन

अबदुल्ला हुसैन
चित्रः ऋषि साहनी
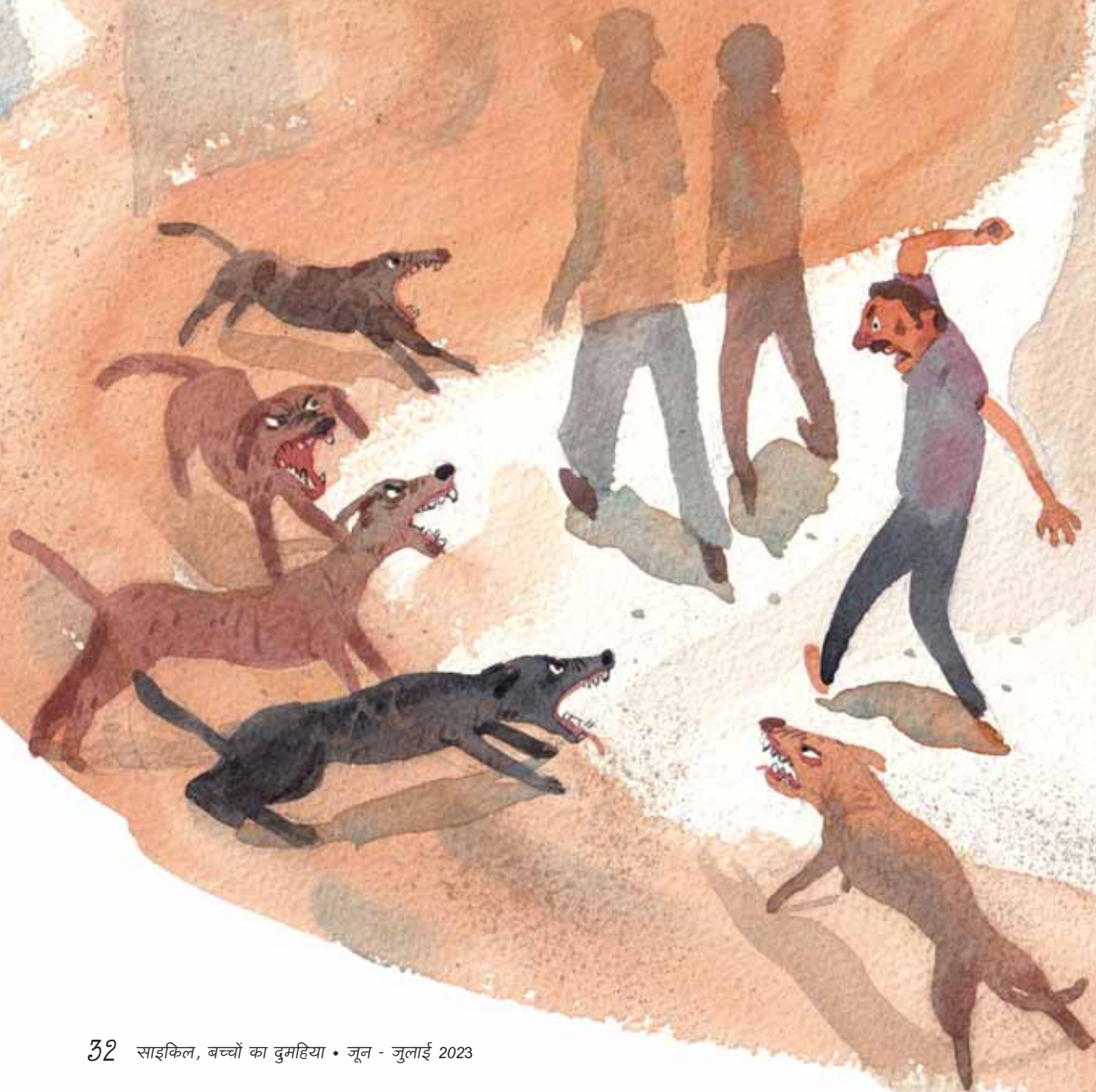
ज़मीन और आसमान जैसे अभी-अभी धोकर फैलाए गए...

सामने बेहद खूबसूरत दिन था। ज़मीन और आसमान जैसे अभी-अभी धोकर फैलाए गए थे। फिज़ा में कोई धूल, कोई धुँध न थी। बादल का हलका-सा साया भी न था। आसमान गहरा नीला और ज़मीन सरसब्ज़ थी और फिज़ा में धूप के रंग थे। सब्ज़े पर से नमी की भाप आहिस्ता-आहिस्ता उठ रही थी। दरख्तों के पत्तों पर रुका बारिश का पानी हवा के साथ बूँद-बूँद गिर रहा था। चमकदार धूप पूरे दिन चारों तरफ फैली रही। और दरख्तों के बीचोंबीच परिन्दे एक-दूसरे का पीछा करते उड़ रहे थे। परिन्दे हर किस्म के थे। वे एक साथ बोल रहे थे। और पता नहीं चलता था कि कौन-कौन सी आवाज़ किस-किस की थी। मगर आवाज़ों का वो सैलाब जो सुनता, उसे लगता कि वे खुश हैं और खुशी में बोल रहे हैं।

सारा दिन सूरज चमका करता...

पगडण्डियों पर सारा दिन सूरज चमका करता। धूप की मारी हुई वे बड़ी भोली-भाली और साफ-सुथरी लेटी रहतीं। मगर उनकी कमीनगी उस वक्त ज़ाहिर होती जब कोई सवारी उनके ऊपर से गुज़रती। तब वे पगडण्डियाँ धूल का एक तूफान उठातीं जो फिज़ा में देर तक मँडलाता रहता और दूर-पास, जो भी इंसान, जानवर या पेड़ उसके निशाने पर आता, यकसाँ सबका दिल दुखाता। किसान मुसाफिरों को गलत रास्ते पर डाल देना और धूल उड़ा-उड़ाकर आसपास के जानवरों को तंग करना इन पगडण्डियों के पास अपनी बदहाली पर खामोश खिलाफत करने के दो पुख्ता तरीके थे। रौशनपुर जाने के लिए आपको रानीकोट के छोटे-से कस्बाती स्टेशन पर उतरकर ऐसे ही रास्तों पर पच्छिम की तरफ दूर तक चलना पड़ता था। रास्ते में आपको कुत्ते मिलते। ये ऐसे ही आवारा मामूली कुत्ते थे जो हर गाँव में होते हैं। और गाँव वालों की राय या ख्वाहिश के बगैर ही अपने ऊपर सारे गाँव की हिफाज़त और देखभाल का ज़िम्मा ले लेते हैं। ये कुत्ते अकसर करीब से गुज़रने वाले मुसाफिर को बाहरी हमलावर और गाँव की सलामती के लिए सख्त खतरे की वजह समझते। इस बात का एलान ऊँची आवाज़ में भौंक-भौंक कर करते। और इस तरह मुखालफत ज़ाहिर करते हुए अगले गाँव तक पीछा करते रहते। जहाँ वे आपको अपने जैसे ही मामूली और शक्की मिज़ाज कुत्तों के हवाले करके इत्मीनान से वापस लौटते।

(ये दो टुकड़े मशहूर उपन्यास *उदास नस्लें* के हैं। इसे अब्दुल्ला हुसैन साहिब ने लिखा है। आने वाले किसी साल कॉलेज या यूनीवर्सिटी की लाइब्रेरी में इसे ढूँढकर पढ़ना।)

सोनरखी

जसिन्ता केरकेट्टा

चित्रः तापोशी घोषाल
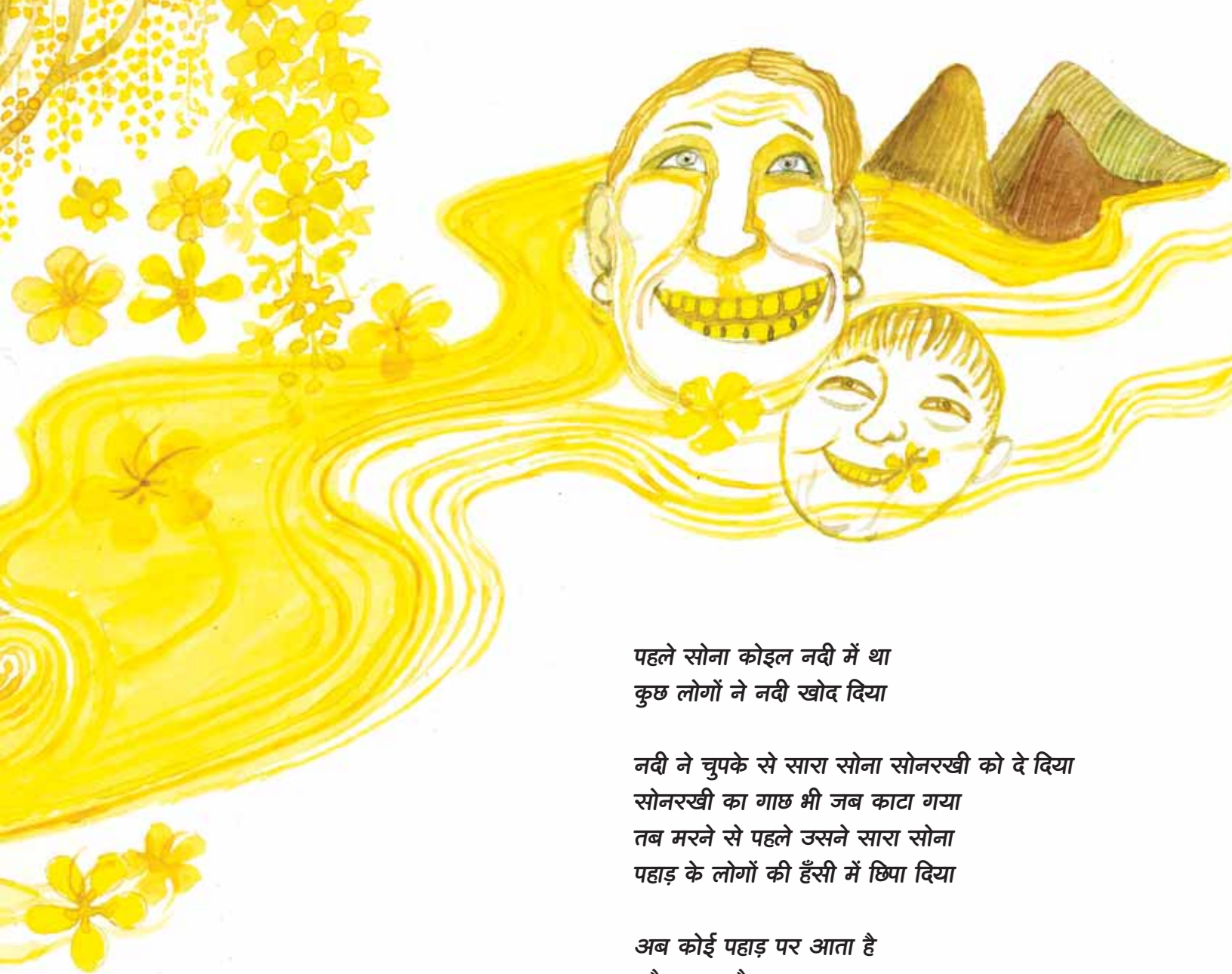
पहले सोना कोइल नदी में था
कुछ लोगों ने नदी खोद दिया

नदी ने चुपके से सारा सोना सोनरखी को दे दिया
सोनरखी का गाछ भी जब काटा गया
तब मरने से पहले उसने सारा सोना
पहाड़ के लोगों की हँसी में छिपा दिया

अब कोई पहाड़ पर आता है
और पूछता है
सोना कहाँ है?
तब पहाड़ के लोग हँसते हैं
सोना ढूँढने वाले
कुछ नहीं समझ पाते हैं

उराँव आदिवासियों की भाषा कुड़ुख में सोनरखी अमलतास को कहते हैं।

एक पतंग पे हरा पतंगा

वरुण ग्रोवर
चित्रः एलन शॉ

एक है घोड़ा
दो सवार हैं
तीन लोक के
चार द्वार हैं

रात भी पाँच
पहर सोती है
कथा शुरू
ऐसे होती है

छे-गो मुसाफिर
पै-दस्तों पे
जंगल के
खाली रस्तों पे

बैठे हैं जी
घूम घाम के
सात समन्दर
आठ नाम के

घर से निकले
थे ये सारे
बरसों पहले
बिना इशारे

खोजने बरखा
वाला बादल
अम्बर में
लटका पानी फल

बादल तो ना
कहीं भी पाया
पर इक ज्ञानी
ने समझाया

सामग्री सब
लेके जाओ
अपना बादल
आप बनाओ

भटक भटक के
किस्से किस्से
जमा किए
बादल के हिस्से

लाद के सब कुछ
जैसे तैसे
लाये हैं संग
हिस्से ऐसे

नौ-नौ मटकी
भूरी खाकी
जिनमें रेत थी
हर दरिया की

दस-दस मोती
देश देश के
कपड़े लत्ते
भेस भेस के

अंकारा से
घास हैं लाये
मेघालय से
बाँस हैं लाये

नील नदी के
ग्यारह कंकड़
कहीं से लोहा
कहीं से लंगड़

कहीं से कोई
नयी सी भाषा
कहीं से केवल
निरी निराशा

चीन से चीनी
तुर्क से अत्तर
रूस से काले
नमक के पत्थर

पेरू के हैं
दर्ज़न केले
फ्राँस से तेरह
चौदह ढेले

ढेला इक-इक
रंग बिरंगा
हरी पतंग पे
हरा पतंगा

गाँव अभी भी
दूर है उनका
पन्द्रह कोस पे
सोलह तिनका

सब कुछ लेकर
घर जाएँगे
जोड़ के शायद
बनेगी बरखा

सत्रा-अठरा
घण्टे बाकी
रात के बाद है
किरण सुबह की

चलना फिर से
शुरू किया है

बादल का सब
बोझ लिया है

गाँव में सूखा
अब तक जारी
आस से सबकी
आँखें भारी

देख मुसाफिर
लहर सी दौड़ी
सभी उछालें
सिक्के कौड़ी

कँधे से
सामान उतारा
आँखों से
आकाश निहारा

दूर दूर तक
धूप बहाली
नदिया पोखर
सारे खाली

बादल की
सामग्री जोड़ी
एक चीज़ ना
पीछे छोड़ी

अत्तर कंकड़
घास निराशा
ढेले पत्थर
केले भाषा

रेत बाँस और
नीला मनका
बिल्ली की
मूँछों का तिनका

दुआ नमस्ते
प्रेम की बोली
बड़ी सी हाँडी
में सब घोली

लेट गये फिर
अखियाँ मींचे
गाँव के बूढ़े
पीपल नीचे

कितने हफ्ते
पड़े रहे बस
ज़िद पे अपनी
अड़े रहे बस

बादल को तो
बनना होगा
हवा को गीला
सनना होगा

सबको गहरी
नींद लगी थी
एक गिलहरी
मगर जगी थी

दौड़ी सरपट
कूद फाँद के
पीठ पे पहली
बूँद बाँध के

टपटप टपटप
बरसा पानी
सबको मिला वो
घर सा पानी
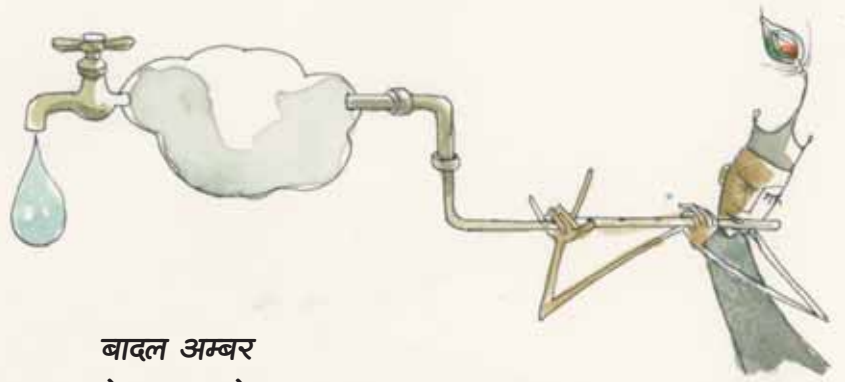
बादल अम्बर
के मन आये
भर भर के सब
बर्तन आये

सफर था लम्बा
बात कठिन थी
मेघ विधि भी
बड़ी जटिल थी

पर जब बरसे
खुल गये सारे
जटिल कठिन सब
धुल गये सारे

एक है चन्दा
दो तारे हैं
तीन लोक के
चौ-द्वारे हैं

बादल की भी
विधि होती है
कथा खतम
ऐसे होती है

कौतुक

मानव कौल

चित्रः राजीव आइप

उसका नाम कौतुक था। वो अपनी माँ के साथ नई-नई गाँव में आई थी। स्कूल के दाखिले में उसका पूरा नाम लिखवाने से उसकी माँ चूक गई थी। सो वो बस कौतुक ही रह गई थी। कभी-कभी मास्टरजी उसका नाम दो बार ले लेते, कौतुक-कौतुक। इसलिए कि सारे मास्टरों को बच्चों को पूरे नाम से पुकारने की आदत थी। जब कभी मास्टरजी ऐसा करते तो अगल-बगल के बच्चे कौतुक को देखकर खिसियाने लगते। कौतुक को अपने ऊपर इतने सारे लोगों की आँखें अजीब लगतीं। वो अपने मोटे चश्मे को उतार देती। चश्मे को उतारते ही उसे लोग नहीं दिखते बस धुँधले रंग नज़र आते। कभी-कभी उसे लगता कि ये धुँधला संसार असली दिख रहे संसार से कितना ज़्यादा सुन्दर है!

कौतुक अपनी जेब में एक पर्ची लिए घूमती थी। जिस पर उसने लिख रखा था, "मैं तुम्हारी बहुत अच्छी दोस्त हो सकती हूँ।" जब से वो इस गाँव में आई थी वो इस पर्ची को अपने साथ जेब में लिए घूमती थी! पाँचवीं कक्षा में वो पीछे की बेंच पर ऊधम करने वाले बच्चों के साथ बैठना चाहती थी। उसे लगता कि उन बच्चों को वो अपनी पर्ची आसानी से दे सकती थी। उनके ऊधम करने के बीच में कहीं वो किसी की जेब में डाल सकती थी। या किसी के टिफिन में उसकी सूखी कड़क रोटी के नीचे छिपा सकती थी। या किसी को मन ही मन अपना पक्का दोस्त मान लेगी और फिर उसे स्कूल के पीपल के पेड़ पर बैठाकर उसे वो पर्ची दे देगी। पर ऐसा हुआ नहीं क्योंकि वो एक लड़की थी। और लड़कियों को पीछे नहीं बैठने दिया जाता था। और ऊपर से उसका कद छोटा था सो उसे कक्षा में आगे की बेंच पर ही बैठना पड़ता था।

उसे ये बात कभी समझ नहीं आई कि आगे बैठने वाले बच्चों को मास्टरजी ज़्यादा तवज्जो क्यों देते थे। आगे बैठने पर सिर्फ मास्टरजी दिखाई देते थे जबकि पीछे बैठने से पूरी की पूरी कक्षा दिखाई देती थी। भूगोल वाले मास्साब भी इस बात की अहमियत नहीं जानते थे। ये सोचकर कौतुक को बड़ा आश्चर्य होता था। आगे बैठे हुए वो बार-बार पीछे मुड़कर सारे ऊधम करने वाले बच्चों को देखती और एक आह भरती। हर आह भरने पर वो जेब में अपना हाथ डाल लेती और अपनी पर्ची को छू लेती। कौतुक स्कूल के लंच ब्रेक में पीपल के पेड़ पर बैठी हुई थी। दूर उसे अलग-अलग घेरों में टिफिन खाते बच्चे दिख रहे थे। वो हर घेरे के बगल में जाकर कुछ देर खड़ी हुई थी पर किसी ने उसे अपने घेरे में बैठने की जगह नहीं दी

थी। सो वो आजकल रोज़ पीपल के पेड़ पर जाकर बैठ जाया करती थी। पीपल की एक मोटी टहनी जहाँ बड़े तने से मिलती थी वो उन दोनों के बीच में बैठती थी। उसे लगता पीपल ने ये जगह उसके बैठने के लिए ही बनाई है। उसी टहनी और मोटे तने के बीच में ही गिलहरी का घर था। कभी-कभी उसे गिलहरी दिख जाती जो भागते हुए अपने घर के भीतर घुस जाती और अपने कोटर से कौतुक को देखती रहती। कौतुक को लगता कि उसका कोई दोस्त नहीं है पर यहाँ पेड़ पर कम से कम एक गिलहरी तो है जिसके साथ वो अपना टिफिन खा सकती थी। वो एक रोटी का टुकड़ा तोड़कर गिलहरी के घर की चौखट पर रख देती और फिर अपना खाना शुरू करती। उसने कभी गिलहरी को उस रोटी को खाते नहीं देखा था।

उस दिन कौतुक ने रोटी के दो तीन टुकड़े खाए और टिफिन वापस बन्द करके रख दिया। उसे भिंडी की सब्ज़ी पसन्द नहीं थी। फिर उसने अपनी जेब से पर्ची निकाली। उसने देखा कि पर्ची जेब में रखे-रखे मुरझा गई है। उसके हाथों की नमी से वो बस फटने को है। उसने उस पर्ची के किनारे को अपनी दो उँगलियों से पकड़ा और धूप दिखाने की इच्छा से अपने हाथों को हवा में उठा दिया। पर्ची को हवा लगी और वो कुछ ही देर में फड़फड़ाने लगी। पर्ची का कागज़ वापस कड़क हो गया था। उसकी जान में जान आई। उसे डर था कि अगर उसे अचानक उसका पक्का दोस्त दिख जाए और उस पक्के दोस्त को देने में पर्ची फट जाए तो दोस्ती वहीं टूट जाएगी। पर्ची का जेब में रखना खतरे से खाली नहीं था। उसे एक उपाय सूझा। वो पेड़ से नीचे उतरकर एक छोटा चपटा पत्थर ले आई। ऊपर आकर उसने अपनी कड़क पर्ची को मोड़ा और उसे गिलहरी के गड्ढे में अन्दर की तरफ रख दिया। पर्ची उड़े ना इसलिए उसने उसके ऊपर एक छोटा चपटा पत्थर रख दिया। भीतर से गिलहरी डरते हुए सब देख रही थी। तभी नीचे से एक लड़के की आवाज़ आई, "ओए!"

उसने देखा कि टीटू पेड़ के नीचे खड़ा है। वह भी क्लास में आगे की बेंच पर बैठने वालों में एक था। वो क्लास का सबसे तेज़ लड़का था। उसे भी कौतुक की तरह मोटा चश्मा लगा हुआ था। कौतुक उसे ऊपर से देख रही थी। पर उसने कुछ कहा नहीं।

"ऊपर क्या कर रही है?" टीटू बोला। कौतुक ने कंधे उचका दिए।

"तेरा सरनेम क्यों नहीं है?" उसने अगला सवाल किया।

कौतुक चुप रही। वो बस उसे देखती रही। फिर टीटू ने कोशिश की कि वो पीपल के पेड़ पर चढ़कर उसके बगल में बैठकर उससे बात करे। पर टीटू का वज़न ज़्यादा था। वो बहुत कोशिशों के बाद भी पेड़ पर चढ़ नहीं पाया। उसकी कोशिशें देखकर कौतुक को उस पर दया आने लगी सो उसने जवाब दिया।

"मैंने अपना सरनेम खा लिया।"

"ऐसे कोई थोड़ी खा सकता है अपना सरनेम?"

टीटू ने पेड़ पर चढ़ना त्याग दिया था। वो नीचे खड़े होकर ही कौतुक से बात करने लगा।

"मैं जब छोटी थी तो मुझे पेट में पटार हो गई थी।"

"पटार?"

"हाँ, सफेद-सफेद लम्बे कीड़े, वो मेरे पेट में रहकर सारा कुछ खा जाते थे।"

"कीड़े?"

टीटू की आँखें आश्चर्य से फटी हुई थीं।

"हाँ, मैं मिट्टी खाती वो उसे खा जाते। चॉक खाती तो उसे खा जाते। रोटी, दाल, चावल, फल सब कुछ खा लेते। फिर एक दिन मास्टरजी ने मेरा नाम पूछा तो मुझे अपना सरनेम ही याद नहीं आया। मैंने अपने पेट को देखा और मुझे पता चल गया कि कीड़ों ने मेरा सरनेम खा लिया है।"

"अभी भी हैं कीड़े पेट में?" टीटू ने पूछा।

"माँ ने विदेशी दवाई दी थी। वो सारे के सारे गहरी नींद में सो गए हैं।"

तभी स्कूल की घण्टी बजी और टीटू तुरन्त स्कूल की तरफ भाग खड़ा हुआ। कौतुक ने एक बार अपनी पर्ची को देखा और गिलहरी से कहा, "जब तक मेरा कोई पक्का दोस्त ना बन जाए तुम इस पर्ची को सँभालकर रखना।" कौतुक को गिलहरी के गड्ढे से चक-चक की आवाज़ आई। उसे लगा शायद गिलहरी ने उसी की बात का जवाब दिया है। वो स्कूल की तरफ वापिस जाती हुई सोचती रही कि गिलहरी की भाषा में चक-चक का मतलब क्या होता है?" क्या गिलहरी ने उससे कहा, "हाँ हाँ!"

या "ना ना" कहा?"

जो भी हो अब ये बात उसे कल लंच ब्रेक में ही पता चलेगी।
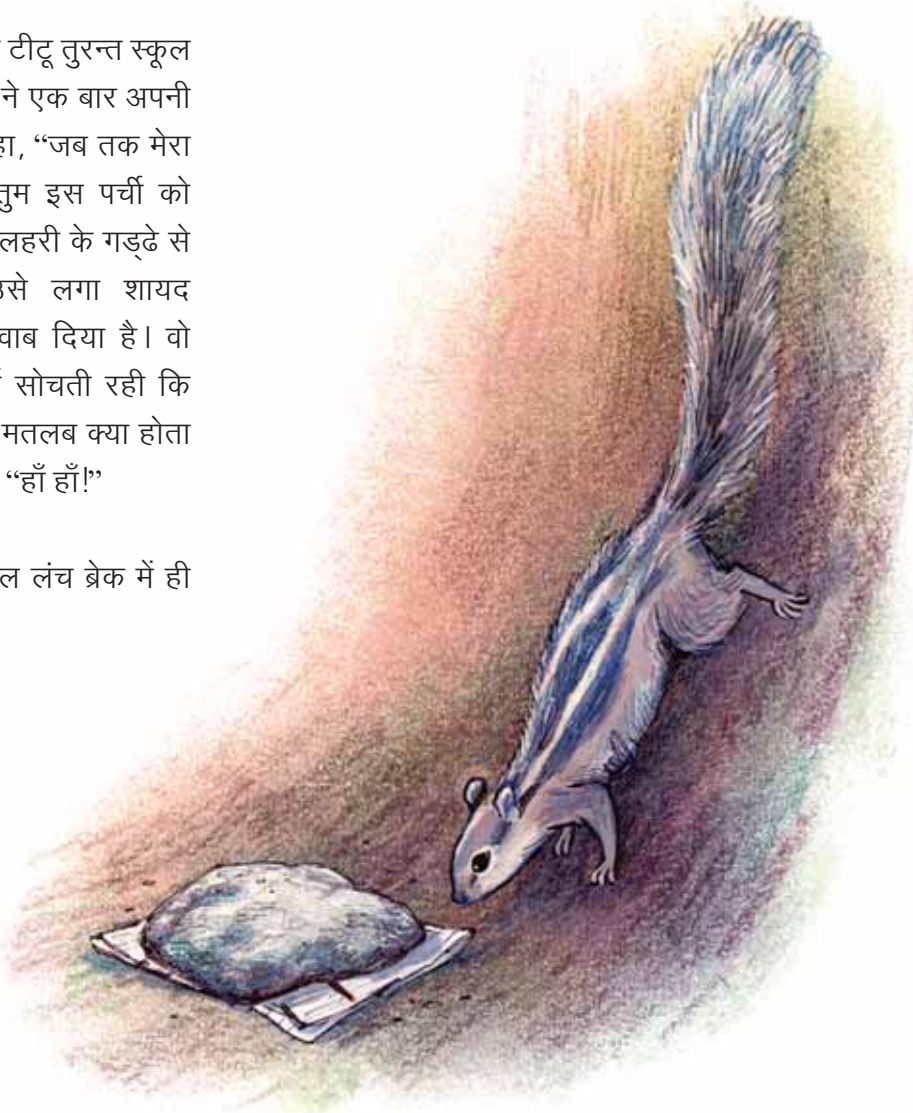
रोटियाँ

नज़ीर अकबराबादी

चित्रः प्रशान्त सोनी

जब आदमी के पेट में आती हैं रोटियाँ
फूली नहीं बदन में समाती हैं रोटियाँ

आवे तवे तनूर का जिस जा ज़बाँ पे नाम
या चक्की चूल्हे के जहाँ गुलज़ार हों तमाम
वाँ सर झुका के कीजे दंडवत और सलाम
इस वास्ते कि ख़ास ये रोटी के हैं मुक़ाम
पहले इन्हीं मकानों में आती हैं रोटियाँ

इन रोटियों के नूर से सब दिल हैं पूर-पूर
आटा नहीं है छलनी से छन-छन गिरे है नूर
पेड़ा हरेक उसका है बर्फ़ी या मोतीचूर
हरगिज़ किसी तरह न बुझे पेट का तनूर
इस आग को मगर ये बुझाती हैं रोटियाँ

पूछा किसी ने यह किसी कामिल फ़कीर से
यह मेहरो माह हक़ ने बनाए हैं काहे के
वो सुन के बोला बाबा खुदा तुझको ख़ैर दे
हम तो न चाँद समझें न सूरज हैं जानते
बाबा हमें तो ये नज़र आती हैं रोटियाँ

शब्दों की आभा

कृष्ण कुमार

रोटी न पेट में हो तो फिर कुछ जतन न हो
मेले की सैर ख्वाहिशें बागो चमन न हो
भूके गरीब दिल की खुदा से लगन न हो
सच है कहा किसी ने कि भूके भजन न हो
अल्लाह की भी याद दिलाती हैं रोटियाँ

कपड़े किसी के लाल हैं रोटी के वास्ते
लम्बे किसी के बाल हैं रोटी के वास्ते
बाँधे कोई रुमाल है रोटी के वास्ते
सब कश्फ़ और कमाल हैं रोटी के वास्ते
जितने हैं रूप सब ये दिखाती हैं रोटियाँ

नज़ीर अकबराबादी की कविताओं को पढ़ते या सुनते हुए लगता है कि घर में रखी हुई छोटी-से-छोटी चीज़ भी विशेष है। घर क्या, सड़क-बाज़ार-पड़ोस की तमाम परिचित चीज़ें नई और ताज़ी दिखने लगती हैं। हम सोचते रह जाते हैं परदा हमारी आँखों पर पड़ा था या चीज़ों पर, जो यकायक किसी ने हटा दिया है? हटाया भी इस अन्दाज़ से है कि हमें मालूम ही नहीं पड़ा।

नज़ीर से मेरा पहला ठीक-ठाक परिचय हबीब तनवीर के नाटक 'आगरा बाज़ार' में हुआ। उस वक्त आगरा और नज़ीर के सम्बन्ध का संज्ञान भी मुझे न था। एक ही चीज़ थी, दृश्य, संगीत और शब्दों का मज़ा जो उस शाम जमकर आया। यहाँ जिस कविता के अंश प्रकाशित किए गए हैं, वह 'आगरा बाज़ार' के गीतों में शरीक थी। एक लम्बा गीत था जिसमें तरबूज़, ककड़ी, और लड्डू पर नज़ीर की कविताएँ शामिल थीं। कई साल बाद जब मैंने 'नज़ीर ग्रंथावली' खरीदी तो पाया कि नज़ीर की नज़र में पतंग, रीछ, कबूतर, पानी, रोटी कोई वस्तु कविता के परे नहीं है। देवी-देवता, त्योहार, जीवन का हर दौर, हर मौसम नज़ीर के काव्य से आलोकित होकर हमारे हाथों में, आँखों के करीब पहुँच जाता है।

‘रोटियाँ’ शीर्षक नज़्म में नज़ीर की कला के कई साधन और औज़ार पहचाने जा सकते हैं। यहाँ दिए गए अंश की पहली-दूसरी पंक्तियों में मुहावरे का सहज चमत्कार चकित कर देता है। फूली हुई रोटी की सुन्दरता उसके ताज़े स्वाद में है, पर पेट में समाने के समय वह फूली नहीं रह जाती। आगे चलकर हम तवे और तन्दूर को रोटी के मकानों की तरह देखते-देखते ऐसी दुनिया में जा पहुँचते हैं जहाँ की गरमी गर्मजोशी में, आग की सेंकन नूर में और चाँद-सूरज की बढ़ाई रोटी के विनय में बदल जाती है। बार-बार चौंककर, खुश होकर हम संसार के बाज़ार की विविधता का सर्वेक्षण करते हुए अपनी आत्मा की गहराइयों में जा पहुँचते हैं।

नज़ीर के समय में चूल्हे, सिगड़ी, तन्दूर में कोयला जलता था। वे दो सदी पहले के आगरा में रहे जब आगरा की शान-ओ-शौकत जा चुकी थी, मगर नज़ीर ने बेरोज़गार, लाचार शहर को भी सिर्फ करुणा की निगाह से नहीं देखा। नज़ीर की रची लाखों पंक्तियों में उत्साह ही उत्साह भरा है, पता नहीं, कितनी रचनाएँ नष्ट होकर विलुप्त हो गईं, मगर जो हमें उपलब्ध हैं, साहित्य की नायाब उपलब्धि हैं। नज़ीर के काव्य की खिड़की से दिखने वाली दुनिया भाषा के कठघरे, धर्म के द्वन्द्व, ज़मीनी-आसमानी बहसों की ऊब से परे है। यहाँ सिर्फ गुनगुनाने की गुंजाइश है।

कूलर

मयंक टण्डन

चित्रः तापोशी घोषाल

खस ऐसा क्या खाती है कि
खस की टट्टी से भी खुशबू आती है।

माथापच्ची

1 फरहा अंक लिखने की एक नई लिपि के नम्बर जानती है जिसमें-

⊂ यानी 2

⊃ यानी 4

∩ यानी 7

ᘉ यानी 9

फरहा ने इसी लिपि का एक सवाल देखा। क्या वो इसके सभी अंक पहचान सकती है?

2 सलीम और किशन एक ही घर में रहते हैं। दोनों पत्रकार हैं। दोनों सच की तलाश में रहते हैं। अकसर दफ्तर साथ ही आते-जाते हैं। सलीम तेज़ चलते हैं। सलीम अकेले दफ्तर जाते हैं तो उन्हें घर से दफ्तर पहुँचने में 20 मिनट लगते हैं। किशन को 30 मिनट लगते हैं। एक दिन किशन जल्दी दफ्तर निकल गए। सलीम उनके जाने के पाँच मिनट बाद निकले। क्या तुम बता सकते हो कि वे दोनों कितने मिनट बाद एक दूसरे से मिल गए होंगे?

3 एक खाली डिब्बे में तुम कितने अंगूर डाल सकते हो?

4 नीरू एक कमरे में बैठी है। बिजली गई और घुप्प अँधेरा छा गया। फिर भी नीरू पढ़ती रही। पढ़ती रही। कैसे?

5 मैं पेड़ पर ही रहती हूँ। पेड़ मेरा घर है। मगर मैं उसमें भीतर नहीं जा सकती। ज़मीन पर पैर रख दूँ तो फिर पेड़ पर नहीं जा सकती। पहचाने?

6 वो कौन सी चीज़ है कि कहने को बढ़ती जाती है पर असल में कम होती रहती है।

2. 10 मिनट, 3. एक भी नहीं, 4. ब्रेल, 5. पत्ती, 6. उम्र

ਭਾਰੇ ਭਾਰੇ ਬਸਤੇ

पंजाबी कविता

भारे भारे बस्ते

सुरजीत पातर

चित्रः तापोशी घोषाल

भारे भारे बस्ते
लम्मे लम्मे रस्ते
थक गए ने गोडे
दुखन लग पए मोढे
ऐना भार चुकाया है
असी कोई खोते आं?

टीचर जी आउणगे
आ के हुकम सुनाउणगे
चलो किताबां खोलो
पिछे पिछे बोलो
पिछ पिछे बोलिए
असी कोई तोते आं?

चलो चलो जी चल्लीऐ
जा के सीटां मल्लीऐ
जेकर हो गई देर
की होवेगा फेर
मैडम जी आउणगे
गुस्सा खूब दिखाउणगे
तुरे ही तां जाने आं
असी कोई खलोते आं?

लिप्यांतरणः तरसेम

इसे एक दफे खुद को ही सुनाओ। हिन्दी तर्जुमा न होता तो भी क्या तुम इसे समझ लेते? इस कॉलम में अगली बार एक और भाषा की कविता पढ़ेंगे।

भारी भारी बस्ते

सुरजीत पातर
अनुवादः तरसेम

भारी भारी बस्ते
लम्बे लम्बे रस्ते
थक गए हैं घुटने
कँधे लगे हैं दुखने
इतना बोझा उठवाया
हम कोई खोते हैं

टीचर जी आएँगे
आ कर हुक्म सुनाएँगे
चलो किताबें खोलो
पीछे पीछे बोलो
पीछे पीछे बोलें
हम कोई तोते हैं?

चलो चलो जी चलें
जा कर सीटें रोक लें
अगर हुई जो देर
तो क्या होगा फेर
मैडम जी आएँगे
गुस्सा दिखलाएँगे
टाइम पर ही पहुँचेंगे
लेट कहाँ होते हैं

मास्टरजी!

वृन्दा शर्मा
चित्रः तापोशी घोषाल

कल रात हलकी-हलकी बारिश होती रही। इसका मतलब आज स्कूल के मैदान में खेलने में मज़ा आएगा। यही सोचते हुए अनिल शहर जाने वाली सड़क पर पहुँचा। उसका स्कूल दो गाँव छोड़कर है। अनिल गाँव के कुछ बच्चों के साथ पैदल ही स्कूल आया-जाया करता था। आज सब बच्चे पहले ही जा चुके थे। स्कूल की एक टूटी-फूटी पीली बस थी तो सही, पर वो अनिल के गाँव की तरफ नहीं आती थी। वैसे भी अनिल को बस में जाना एकदम नामंज़ूर था। रोशन नाम का एक चंट लड़का इसी बस में स्कूल जाता था। रोशन के साथ सफर करने से बेहतर तो पैदल जाना था।

आज एक बात अनिल को खाए जा रही थी। उसे देरी हो रही थी पर वह सड़क के कंकड़-पत्थरों को ठोकर मारता, धीरे-धीरे चला जा रहा था। उसे शक हो गया था कि गणित के मास्टरजी ने उसे अपना निशाना बना लिया है। शक छोड़ो, यकीन हो गया था। छह का पहाड़ा गलत क्या पढ़ दिया, मास्टरजी

ने उसे पूरे हफ्ते गणित के पीरियड में खड़े रहकर पहाड़े सुनाने की सज़ा दे डाली। रोज़ कहीं ना कहीं गलती हो जाती थी। उसे लगने लगा था कि सारा साल पहाड़े सुनाते जाएगा। शुक्र है उस हसन के बच्चे ने चार के पहाड़े में गलती कर के ये सज़ा अपने ऊपर पड़वा ली।

शनिवार को मास्टरजी ने भाग के सवाल दिए थे। कहा था कि सोमवार को कॉपी चेक करेंगे। आज वही सोमवार था। उसे पता था कि पहली घण्टी बजते ही मास्टरजी प्रकट होंगे। सबसे पहले उसी की कॉपी माँगी जाएगी। यही एक बात अनिल के पैरों में जैसे बेड़ी डाले हुई थी।

घर से निकले काफी देर हो चुकी थी। स्कूल अभी भी एक गाँव दूर था। स्कूल जाए कि न जाए? अनिल के मन में यह सवाल बार-बार आ रहा था। वह सड़क किनारे बैठ गया। गहरी साँस ली। और तय किया कि आज स्कूल नहीं जाएगा। और घर भी दोपहर में ही जाएगा। अभी घर लौटने पर सौ सवाल पूछे जाएँगे। बाबा का क्या भरोसा, एक दो जड़ भी दें। दोपहर में जाने से उसे कुछ भी बताने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। पर घरवालों को पता चल गया तो? अरे नहीं, पता कैसे चलेगा। उसे यह प्लान ठीक ही लगा। उसने रास्ता बदल लिया।

कुछ देर बाद वो पड़ोसी गाँव के मैदान के किनारे पहुँचा। उसके हमउमर कुछ लड़के एक खाली बोतल को किक मारते खेल रहे थे। अनिल को बड़ा तरस आया। उसे अपनी गेंद याद आई। वह वहीं बैठकर खेल देखने लगा।

उन लड़कों ने अनिल को देख लिया था। लड़के खेलते रहे और वह उन्हें खेलते देखता रहा। जब खेल रुका तो एक लड़का उसके पास आया। अनिल सीधा होकर बैठ गया। उसने पूछा, "स्कूल से भागकर आए हो?"

अनिल थोड़ा सकपकाया। फिर बिना घबराए जवाब दिया, "भागकर क्यों? आज स्कूल में छुट्टी थी पर मैं गलती से स्कूल चला गया। क्या आज तुम्हारा स्कूल नहीं है? मुझसे क्यों पूछ रहे हो?"

"तुमने वर्दी पहनी है ना। हमारे गाँव के स्कूल में गर्मी की छुट्टी पड़ी है। दो महीने बाद लगेगा।" लड़के ने कहा। कुछ रुककर उसने फिर सवाल किया, "हमारे साथ खेलोगे?"

अनिल ने मैदान में खड़े लड़कों की तरफ देखा। वे काफी उत्सुकता से देख रहे थे। अनिल ने सोचा कि दोपहर तक उसकी वर्दी गन्दी नहीं हुई तो अम्मा को शक हो जाएगा। इसलिए खेल में शामिल होने में ही उसे भलाई लगी।

अनिल को अपनी गेंद याद आ रही थी। मगर बोतल से खेलने में भी एक मज़ा था। उसे लात पड़ती तो वो 'फ़च्च्च्च्च्च्च' की आवाज़ निकालती। उड़ती हुई दूर तक चली जाती। यह खेल दम से ज़्यादा अकल का खेल था। अनिल को बोतल से खेलने की आदत नहीं थी। कभी-कभी उसकी किक मिस हो जाती। पैर मिट्टी पर पड़ता और वो गिर जाता। गिर जाता तो लड़के हँस पड़ते। अनिल को ये लड़के कुछ खास पसन्द नहीं आए। हाँ, वो लड़का ज़रूर ठीक-ठाक था जिसने उसे खेलने के लिए बुलाया था।

खेल लम्बा चला। खिलाड़ी थकने लगे थे। किसी किसी के घर से बुलावा आ गया था। तय हुआ कि खाना खाकर फिर यहीं मिलते हैं। तभी वही लड़का अनिल के पास आया।

"अब तुम कहाँ जाओगे? हम लोग खाना खा कर फिर यहीं खेलने आएँगे। मेरे घर चलो।"

अनिल ने इस लड़के को ऊपर से नीचे देखा। उसे तो लड़के का नाम भी नहीं पता था।

"मुझे तो तुम्हारा नाम भी नहीं पता।"

"इसमें क्या बड़ी बात है। मेरा नाम सोहन है। चलें?"

इतना परिचय काफी लगा। दोनों सोहन के घर की तरफ निकल पड़े। अनिल पहले कभी इस गाँव में भीतर नहीं आया था। स्कूल आते-जाते यह गाँव रोज़ दिखता था। ये गाँव उसके गाँव जैसा ही था। वैसे ही मकान, ऊबड़-खाबड़ सड़क, घर में खुली छोटी-सी दुकान, गलियों में टहलते गाय-भैंस और कुत्ते। एक बछड़े को उसने अपने टिफिन का खाना खिला दिया। अनिल के मन में जो थोड़ी-सी घबराहट थी वो निकलने लगी। उसे स्कूल न जाने का फैसला अब ठीक मालूम पड़ रहा था।

सोहन के घर वे ज़रा-सी देर में ही पहुँच गए। सोहन की माँ खाना बना रही थीं। सोहन ने अनिल को उनसे मिलवाया। माँ ने अनिल को एक लड्डू दिया और खाने का इन्तज़ार करने को कहा। सोहन की एक नई-नवेली छोटी बहन थी। उसके साथ वे दोनों खेलने लगे। वे उसके पालने को झुलाकर, तरह-तरह की आवाज़ें निकालकर और मुँह बनाकर उसका मन बहलाने लगे। वो किसी छोटी-सी गुड़िया जैसी थी। बहुत ही छोटी! अनिल ने कभी इतनी छोटी बच्ची नहीं देखी थी। बड़ी-बड़ी, काजल-भरी आँखें चमक रही थीं। अनिल उसके हाथ में अपनी उँगली देता। वो उसे कस कर पकड़ लेती। अनिल उसका हाथ इधर-उधर झुलाता। वो खिलखिला उठती।

कुछ देर में सोहन की माँ दोनों के लिए खाना लेकर आ गईं। उन्होंने सोहन से कहा, खाने के बाद अपने दोस्त को उसके घर छोड़ आना। "अब खेलने मत जाना। तेरे पापा आने वाले हैं। खेलता दिखा तो डाँट खाएगा।"

अनिल ने देखा कि सोहन ने उदासी भरे स्वर में हामी भर दी। तो ये अन्त हुआ आज के रोमांच का? अनिल को पूरा विश्वास हो चुका था कि इस गाँव के बड़े-बुज़ुर्ग भी खूसट ही हैं। उसे थोड़ी निराशा हुई मगर ये भी ध्यान आया कि घर ना पहुँचा तो उसके बाबा भी पिटाई को आतुर मिलेंगे। उसने सोहन से पूछा, "तुम्हारे बाबा कहाँ गए हैं?"

"वो अगले गाँव के स्कूल में पढ़ाते हैं। अब तक तो छुट्टी हो गई होगी। आने वाले होंगे।"

अनिल के पेट ने छोटा-सा गोता खाया। अगले गाँव में? कहीं सोहन के बाबा उसी के स्कूल में तो नहीं पढ़ाते? नहीं नहीं। ऐसा नहीं हो सकता। और क्या छुट्टी का समय हो भी गया? अभी तो वो घर से स्कूल के लिए निकला था और अब छुट्टी भी हो चुकी है। हद है।

फिर भी अनिल ने सोचा अब यहाँ से जल्दी निकल लेना चाहिए। उसने फुर्ती से अपना खाना खत्म किया। इतने में दूसरे कमरे से किसी के भीतर आने की आवाज़ आई। सोहन की बहन की किलकारी से घर गूँज उठा।

"इसके पापा आए होंगे। जाओ मिल लो।" सोहन की माँ ने कहा।

अनिल के पेट ने फिर एक छोटा-सा गोता खाया पर उसने अपने आप को समझाया। आज का दिन काफी अच्छा गुज़रा है, डरना क्यों है। उसने अपने बालों पर हाथ फेरकर उन्हें ठीक किया। मोजे ऊपर खींचे, कमीज़ नेकर में खोंसी। और अपनी बाज़ू से मुँह पौंछकर मुस्कराता हुआ रसोई से कमरे में दाखिल हुआ।

कमरे के नज़ारे से अनिल की मुस्कराहट उसकी

शर्ट के कॉलर में जा दुबकी। उसके घुटनों से जैसे जान निकल गई। ये क्या! सामने छोटी बच्ची को गोदी में ये कौन झुला रहा है! अनिल ने फटी आँखों से सोहन की ओर देखा। सोहन ने आगे आकर उस आदमी से कहा, 'पापा ये मेरा नया दोस्त है, अनिल। आज इसके स्कूल में छुट्टी हो गई तो ये हमारे साथ खेलने लगा। अभी इसे घर छोड़कर आता हूँ। दूसरे गाँव में रहता है।'

सोहन के पापा ने मुड़कर अनिल की ओर देखा। चेहरे पर ममता की जगह तनी हुई भँवों ने ले ली।

"तुम! मेरे घर में! कौन-सी छुट्टी?" वे गरजते हुए बरसे।

अनिल से कुछ बोलते ना बना। सारी दुनिया में आज उसे इसी घर आना था। मरी हुई आवाज़ में उसके मुँह से बस इतना ही निकलाः

"जी मास्टरजी!"

इतने बंदर

प्रभात

चित्रः वसुन्धरा अरोरा

बन्दर बाराबंकी के
धरना देने आकर बैठे
जब पानी की टंकी पे

ज़िला कलेक्टर हाथी बोले
पुलिस अधीक्षक घोड़े से
आप तो बोले थे टंकी पर
बन्दर हैं पर थोड़े से

इतने बन्दर थोड़े हैं
तो ज़्यादा कितने होते हैं
आपको लेकर ठीक सुना था
खड़े-खड़े भी सोते हैं

मलेशिया की कविता

नन्ही चींटियाँ

जुरीनाह हसन
अँग्रेज़ी से भावानुवादः यादवेन्द्र
चित्रः प्रशान्त सोनी

मैं थोड़ा-सा शहद गिराती हूँ ज़मीन पर
कुछ चींटियाँ आ जाती हैं
कुछ मिनट बीते
तो और चींटियाँ इकट्ठा हो गईं
देखते देखते चींटियों का ताँता लग गया
वे लाइन लगा कर चली आ रही हैं।

मैं निहारते हुए सोचती हूँ
कि कैसे बगैर पुकारे, कोई आवाज़ निकाले
वे अपने तमाम दोस्तों को इकट्ठा कर लेती हैं
कि जल्दी जल्दी आओ
देखो यहाँ खाने को कुछ है
मैंने किताबों में पढ़ा था
कि जन्तु आपस में खूब बोलते बतियाते हैं

यह सब तो मैंने अपनी आँखों देख लिया
और उनकी दक्षता पर मोहित हो गई
एक दिन मैंने एक चींटी को कहते सुनाः
यह मत भूलना कि हम
इंसान नहीं महज़ जानवर हैं
जब हम एक दूसरे के
अगल बगल से गुज़रते हैं
आपस में बोल बतिया लेते हैं
पर हम किसी भी हाल में
झूठ नहीं बोल सकते

इंसान की तरह हम चतुर सुजान नहीं हैं
खुदा की बनाई तमाम कायनात में
इंसान ही इकलौता ऐसा जीव है
जिसके पास झूठे बोल बोलने
और उन्हें पूरी धरती पर
फैला डालने की काबिलियत है

वैशाली नायक
चित्रः अमरजीत सिंह

सुसुशीला का सही वाला नाम सुशीला था। वह रोज़ बिस्तर गीला करती थी। इसलिए उसकी दो कमीनी बहनों ने उसका नाम सुसुशीला रख दिया था। सुसुशीला हमेशा क्लास में अव्वल आती। लोगों के लिए वह 'ब्राइट' स्टूडेण्ट थी। लेकिन रात होते ही लोग उसे फेल कर देते। सबसे अलग उसका बिस्तर रूम के बिलकुल कोने में लगता।

अब पूरे घर को जैसे मज़ा आने लगा था कि सुसुशीला की सुसु कैसे बन्द कर सकते हैं। उस बारे में रोज़ खाने पर चर्चा होने लगी। उसकी दो कमीनी बहनें उसे जान-बूझकर गहरी नींद से उठाकर सुसु करवाने ले जातीं। उसे पानी नहीं पीने देतीं। पापा को कहीं से पता चल गया था कि ज़्यादा मीठा या नमकीन खाने से ज़्यादा सुसु होती है। तो मिठाई और चाट भी छूट गए। दोनों कमीनी लपलप करके सारे गुलाब जामुन और पैटिस खा जातीं। गुलाबजामुन तो पसन्द नहीं था सुसुशीला को, लेकिन पैटिस के खयाल से ही बिचारी की लार टपकती थी।

हर सुबह रस्सी पर टँगी हुई बेडशीट पर सुसु के नक्शे और गहरे हो रहे थे। शुरुआत में बेडशीट के नीचे कमीनी बहनें 'सरिता साड़ी और ड्रेस मटेरियल' की प्लास्टिक की थैलियाँ रखती थीं, ताकि गद्दा खराब न हो जाए। पर सुसु हर बाँध तोड़कर अपनी राह बनाती। दिन-ब-दिन सुसुशीला का कॉन्फिडेंस छोटे से छोटा हो रहा था। पहले कद्दू था, फिर अण्डा और अब खजूर हो गया था।

एक बार सुसुशीला ने चाची को मामी से बात करते हुए सुना, "अगर इसकी माँ होती तो यह प्रॉब्लम नहीं होती।" यह सुनकर सुसुशीला को लगा कि ठीक कहती हैं चाची... उसकी माँ होती तो इन सबको डण्डे से मारती। रात को सुसुशीला के साथ ही सोती और चुपके से सारे पैटिस उसे खिलाती। पर माँ तो कब की दीवार पर लगी फोटो बन चुकी थीं।

अब सुसुशीला को अपना खजूर जितना कॉन्फिडेंस बचाना था। उसे अपनी सुसु किसी भी तरह रोकनी थी। फिर एक दिन छोटे हनुमानजी वाले मन्दिर के पीछे वाले बनिए की दुकान से उसने बैंड-एड का एक बड़ा-सा डिब्बा खरीद लिया। अब वह रोज़ ढेर सारे बैंड-एड चिपकाती। अपने सारे स्कॉलरशिप और प्राइज़ के पैसे सुसुशीला अपनी सुसु रोकने के लिए लगा देती। दुकानदार कन्फ़्यूज़-सा रहता कि सुसुशीला रोज़-रोज़ कहाँ गिरती-पड़ती थी जो इतने बैंड-एड खरीदती थी? लेकिन इससे घर में वाकई खुशहाली फैल गई थी। सुसुशीला सयानी हो गयी

Savita
Saree

है, ऐसा मौसी-मामियों ने कहा। सुसुशीला खुश थी। खजूर जैसा कान्फिडेंस अब फिर से बढ़ने लगा था। और वह खुद भी...

एक हफ्ते में अचानक से उसके हाथ और पैर सूजने लगे। और फिर सुसुशीला गुब्बारे-सी फूलती गई। यहाँ से वहाँ बाउंस कर-करके चलती। उसे दो दरवाज़ों के बीच से सम्भलकर जाना पड़ता। ज़्यादा प्रेशर देकर बैठ नहीं पाती थी वह। कहीं फूट गई तो? पापा ने सारे वैद्य हकीमों को दिखाया लेकिन किसी को समझ नहीं आया कि यह कौन-सा रोग है। सुसुशीला को पता था कि यह किस वजह से हो रहा है लेकिन इतने दिनों बाद उसकी शर्मनाक बीमारी ठीक हुई थी तो वह किस मुँह से लोगों को अपना सीक्रेट बताती?

फिर एक सुबह, लोकल न्यूज़ चैनल वाले अपने 'अद्भुत बच्चे' प्रोग्राम के लिए सुसुशीला का इंटरव्यू लेने पहुँच गए। दोनों कमीनी बहनों ने अपनी दिवाली की ड्रेस पहनी थी। हाथ में रूह अफज़ा लेकर वह कैमरे के इर्द-गिर्द मँडरा रही थीं। लेकिन जब पापा रिपोर्टर्स के साथ ऊपर वाले कमरे में पहुँचे तो सुसुशीला खिड़की तोड़ फुर्र करके खिड़की के बाहर उड़ गई। उसे पकड़ने के लिए सारे खिड़की की तरफ भागे पर हवा की गति से वह ऊपर आकाश में बहने लगी।

पूरा शहर छतों से यह अद्भुत दृश्य देख रहा था। फिर कुछ देर में गुब्बारा गायब हो गया। अगले दिन शहर के पास अचानक से एक तालाब-सा बन गया था। नमकीन पानी का तालाब। म्यूनिसिपल कॉर्पोरेशन ने तुरन्त वहाँ बोटिंग शुरू करवा दी। अब पापा दोनों कमीनी बहनों को लेकर हर हफ्ते वहाँ बोटिंग करने जाते हैं।

मैं अल्बानिया से हूँ!

मैत्रेयी कुलकर्णी
चित्रः श्रुति हेमाणी

मैं फिलाडेल्फिया में थी। एक दिन मैंने एयरपोर्ट जाने के लिए कैब बुलाई। ड्राइवर का फोन आया। उसकी बातों से मुझे लगा कि वो किसी और देश का रहनेवाला है। गाड़ी में बैठने के बाद इधर-उधर की बातें होने लगीं। उसने मुझसे पूछा कि मैं कहाँ से हूँ।

मेरे बात करने के ढँग से, लहज़े से शायद उसे भी लग गया था कि मैं अमरीका से नहीं हूँ। मैंने बताया कि मैं भारत से हूँ। उसे शायद अन्दाज़ था कि यही जवाब आनेवाला है। मेरे जवाब देने से पहले ही उसने सिर हिला कर कहा, “मैं अल्बानिया से हूँ।

देखने आया था कि अमरीका कैसा है। फिर सोचा पाँच साल रहकर वापस देश लौट जाऊँगा। फिर बच्चे हो गए। उनके स्कूल शुरू हो गए। फिर लौटना हुआ ही नहीं।"

मैंने पूछा, "आप अपने देश जाते रहते होंगे!"

"हमम.....सच बोलूँ तो, नहीं जाता। मेरी माँ और भाई वहाँ हैं। सर्दियों में वे ही यहाँ आ जाते हैं। पूरे परिवार के साथ वहाँ जाना मुश्किल है। इतने पैसे कहाँ होते हैं! बच्चों का स्कूल, पढ़ाई काफी खर्चीली है। यह नौकरी, पैसे कमाना सब बच्चों के लिए ही तो कर रहा हूँ। अल्बानिया में मेरा घर वैसे ही रखा है। उसे नहीं बेचा। अगर कभी वापस जाना हुआ तो रहने के लिए अपना घर तो होना ही चाहिए न। कुछ दिन पहले मेरा बेटा वहाँ दो महीने रहके आया है। उसे वहाँ सब अच्छा लगा। अपनी दादी और चाचा के साथ भी रहा। तुम भारतीयों की तरह हम अल्बानियाई भी साथ में यकीन रखते हैं। परिवार का साथ।"

वो बोलता रहा। और मुझे कई साल पहले आई-बाबा को किया एक फोन याद आता रहा। अमरीका में पीएचडी का मेरा पहला साल शुरू हुआ ही था। गर्मियों के डेढ़-दो महीने पुणे में रहकर मैं लौटी ही थी। पुणे की यादें, घर, आई-बाबा, चाचा-चाची, दोस्त, उनके साथ घूमने-फिरना सब बहुत ताज़ा था। लौटकर आने पर यहाँ सब गड़बड़ा जाता है – कपड़े कब धोना है से लेकर खाने में क्या बनाना है, कहाँ से शुरू करना है सब कुछ।

ऐसे में एक दिन मेरी दोस्त ने मैसेज किया कि उसकी शादी होने वाली है। वो पुणे में रहती है। शादी तीन-चार महीनों में होने वाली थी। हम सात सहेलियों का एक ग्रुप था। सात में से तीन अमरीका

में थीं। बाकी चार पुणे में। ग्रुप की यह पहली शादी थी। न जाने का तो सवाल ही नहीं था। पर थोड़ा हाँ न हाँ न के बाद हम तीनों का पुणे जाना तय हो गया। पुणे में शादी की तैयारियाँ ज़ोरों से चल रही थीं।

पर जब टिकिट लेने का समय आया तो मेरे हाथ-पैर फूल गए। किराया आम किराए से दुगुना हो गया था। मैं सोचने लगी कि कहीं मेरा पुणे जाने का निर्णय गलत तो नहीं था। अभी तो मैं घर से लौटी हूँ। मन में उलझन होने लगी। चिड़चिड़ाहट-सी छूटने लगी। सोचने लगी कि मुझे मेरे ही घर जाने के लिए इतना सोचना क्यों पड़ रहा है! जब न रहा गया तो आई-बाबा को फोन किया। देर रात मैं उन्हें कभी फोन नहीं करती। यह वो भी जानते थे। उन्होंने फिक्र से फोन उठाया होगा। एक-दो मिनट चुप रहने के बाद मुझसे रहा नहीं गया। "बाबा, इतना महँगा टिकिट है। मैं अभी तो आई थी। पर फिर से आना चाहती हूँ। मैं कोई गलती तो नहीं कर रही!" मैं रोती जा रही थी। उसके बाद जो बाबा ने बोला वो मुझे जीवन भर याद रहेगा। वो बहुत सहजता से बोले, "इतना कितना पैसा है! दो हज़ार डॉलर ही ना। अब से जब भी। जहाँ भी हो जब कभी घर आने का मन करे तो घर आना ही है। टिकिट चाहे कितना भी हो। हम जब अलग-अलग देश में रहते हैं तो ऐसा तो होगा ही। घर आना हर चीज़ से ज़्यादा कीमती है।"

मैं जैसे एकदम-से उबर गई। लगा, जैसे मैं अपने घर में हूँ। अपने पसन्दीदा सोफे पर। माँ की बनाई गुदड़ी में गुड़मुड़ी होकर बैठी हूँ। वैसे ही जैसे हमारा कुत्ता गर्माइश पाने के लिए आई-बाबा के पाँव के पास गुड़मुड़ी होकर बैठता है। जिस बात से इतने तनाव में थी, वो बहुत छोटी लगने लगी थी।

कभी करीब के दोस्त-रिश्तेदार दूर हो जाते हैं। नए दोस्त उनकी जगह ले लेते हैं। नए रिश्ते बनते हैं। कुछ जगहें हैं जो खाली रह जाती हैं। कुछ रिश्ते निभ पाते हैं, कुछ नहीं। कभी हम बदलते हैं, कभी दूसरे। पर इतनी बड़ी दुनिया में अपना एक घर है। उसमें रहने वाले चार लोग हैं। एक कुत्ता है जो हमेशा आपके लिए है। उनका प्रेम आपके लिए कभी कम न होगा। यह सोचना ही कितना सुखद है।

ऐसी ही एक जगह अपने लिए बनी रहे शायद इसीलिए अल्बानिया के उस ड्राइवर ने अपने लिए वो घर रख छोड़ा है। कि वो हक से वहाँ जाकर रह सके।

हाँजी-नाजी

स्वयंप्रकाश

चित्रः अतनु राय

हाँजी कुम्हार का गधा बीमार पड़ गया। गधे के पूरे मुँह पर बड़े-बड़े फोड़े हो गए। जब घरेलू उपचारों से काम नहीं चला तो हाँजी गधे को लेकर नाजी हकीम के पास गया। हकीम साहब ने गधे का मुआयना किया और हालचाल वगैरह पूछकर तीन दिन की दवा दे दी जो करीब एक सेर चूरन जैसी थी।

हाँजी ने पूछा, "इस दवा को मुन्ने को कैसे खिलाना है?"

मुन्ना गधे का नाम था।

नाजी हकीम ने कहा, "दो मुट्ठी दवा को आधी बालटी पानी में घोलकर बाँस की एक भोंगली में भर लेना और भोंगली को मुन्ने के मुँह से लगा देना। और दूसरी तरफ से ज़ोर-से फूँक मार देना। दवा मुन्ने के गले के नीचे उतर जाएगी।" हाँजी दवा लेकर चला गया। चार रोज़ बाद हाँजी कुम्हार अपने गधे को लेकर नाजी हकीम के पास पहुँचा तो गधा तो ठीक-ठाक था लेकिन हाँजी कुम्हार की हालत खराब थी। सारे चेहरे पर बड़े-बड़े फोड़े हो गए थे।

हाँजी कुम्हार की यह हालत देखकर नाजी हकीम खुद उठकर बाहर आए और बोले, "क्या हुआ हाँजी? तुम तो मुन्ना के लिए दवा ले गए थे। पिलाई उसे? वह तो ठीक-ठाक लग रहा है तुम्हें क्या हो गया?"

"जी मुन्ना ने पहले फूँक मार दी!!" हाँजी कुम्हार ने कहा।

घुँघरुओं की आवाज़ वाले दिन

हर्षिता जोशी

चित्रः वसुन्धरा अरोरा

बात तबकी है जब हम खटीमा से नानकमत्ता आए थे। हमें रहने के लिए एक घर चाहिए था। हमारी एक आंटी ने एक घर के बारे में हमें बताया। हम उस घर पहुँचे। देखने में वह बहुत सुन्दर घर था। वो घर एक गली में था। इस गली के आसपास बहुत सारे लोग रहते थे। तो हम लोगों ने वहीं रहने का सोचा। रहते-रहते चार दिन बीत गए। हमारा सारा सामान भी सेट हो गया। अब हमारा सारा सामान फिट हो गया तो मम्मी-पापा भी अपने-अपने काम पर जाने लगे। हम लोग भी अपने-अपने स्कूल जाने लगे। मम्मी भी काम पर जा रही थी तो घर का काम नहीं हो पा रहा था। तो हम लोगों ने एक व्यक्ति को काम पर रख लिया।

एक महीना बीत गया। एक महीने बाद हमें उस व्यक्ति ने कहा कि आपके घर में मुझे घुँघरुओं की आवाज़ आती है। शायद कोई भूत है। ये बात सारी गली में आग की तरह फैल गई। पड़ोसी भी कहने लगे कि यहाँ कोई भूत है। हम लोगों को भूत पे विश्वास नहीं है। हम सब लोग उस दिन घर पर रुक गए। और ये क्या हुआ, हमें सच में घुँघरुओं की आवाज़ सुनाई दी। हमारे घर के सारे लोग डरने लगे। लेकिन पापा और मैं नहीं डरे। क्योंकि मुझे पूरा विश्वास था कि भूत नहीं होते। उस राज़ का पता लगाने के लिए हमने उस आवाज़ का पीछा किया। और पीछा करते-करते हम लोग अपने घर की बालकनी में पहुँचे। और वहाँ देखा कि चिड़िया का एक घोंसला है। और उस घोंसले की घास में एक घुँघरू टँगा दिखा। जब भी चिड़िया घोंसले में आती थी तो घुँघरु बज उठता था। तो यह था हमारे घर के भूत का राज़।

(हर्षिता नानकमत्ता स्कूल, ऊधमसिंह नगर, उत्तराखण्ड में छठी में पढ़ती हैं।)